Chapter-1

प्रथम अध्याय

जीवन परिचय

व्यक्तित्व निरूपण

विचार एवं जीवन - दर्शन

साहित्य के सृजन में, साहित्यकार के संस्कार, पारिवारिक वातावरण, उससे मनस्-पटल पर अंकित प्रभाव तथा इस प्रभाव के द्वारा निर्मित विचारधारा और मान्यताओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। व्यक्ति के जीवन में कब, कौन सी घटनाएं, उसे असाधारण बना देने में सहायक हो जाती हैं - यह कहा नहीं जा सकता। एक साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन करते समय अध्येता के समक्ष यह एक खोजपूर्ण विषय होता है कि अमुक साहित्य-कार को किन वस्तुओं ने, किन परिस्थितियों ने, किन घटनाओं ने साहित्यकार बना दिया। इसीलिए प्रस्तुत अध्याय में प्रसिद्ध उपन्यासकार बाबू भगवतीचरण वर्मा की साहित्यकार - निर्मात्री परिस्थितियों व घटनाओं की खोज निकालने के लिए उनके जीवन के विभिन्न पक्षों को उपस्थित किया गया है। साहित्यकार का जीवन तथा साहित्य उसके संस्कार, अनुभूति-जन्य मान्यताओं एवं विचारधाराओं के द्वारा अनुशासित व पल्लवित होता है। इसलिए इस अध्याय में वर्मा जी के जीवन -दर्शन एवं मान्यताओं का भी सविस्तार अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

<u>जन्म एवं वंशज</u> :- वर्मा जी का जन्म उन्नाव जिले के शफीपुर कस्बे में भाद्रपद शुक्ल अष्टमी, रविवार, संवत् 1960 विक्रमी (30 अगस्त 1903 ई0) को हुआ था।

वर्मा जी के पूर्वज उन्नाव जिले के ही 'किसी'[1] गांव के जमींदार थे किन्तु बाद में वे लोग कानपुर आकर बस गये थे। जमींदार होने के कारण ये लोग बड़े 'उखड़े हुए, अलमस्त और गैर-जिम्मेदार'[2] थे अत: उनकी मान्यताएं एवं स्वभाव एक निश्चित ढर्रे पर चलनेवाले मध्यमवर्ग से मेल नहीं खाती थीं।

वर्मा जी के पितामह मुंशी शिवदीनसिंह ब्रिटिश शासनान्तर्गत 'इन्सपेक्टर आफ़ पोस्ट आफिसेज़' के पद पर राजपुर में कार्य करते थे। उच्च पदाधिकारी होने के कारण मुंशी शिवदीनसिंह को अपने समाज में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वे काली के उपासक थे। उनके दो विवाह हुए थे, किन्तु कोई ~~सन~~ संतान नहीं थी। बाद में काली के समक्ष

1- 'मेरे पूर्वज जिला उन्नाव के 'किसी' स्थान के रहनेवाले थे --- वंशवृक्ष रखने की प्रवृत्ति मेरे उन पूर्वज में जो कानपुर नगर में आकर बसे थे, शायद नहीं थी क्योंकि उनके पूर्वजों के संबंध में मैंने उड़ती-उड़ती बातें भर सुनी हैं, प्रमाण कोई भी नहीं हैं।'
-25 अगस्त, 1963, पृ0 17 - धर्मयुग, भगवतीचरण वर्मा,

2- वही ----धर्मयुग, २५ अगस्त, १९६३ पृ० १७, भगवतीचरण वर्मा

ब्राह्मण से आशीर्वाद व वरदान प्राप्ति के फलस्वरूप उनके दो पुत्र हुए, जिनके नाम कालीचरण व देवीचरण रखे गये (ऐसा वर्मा जी के परिवार वालों का कहना है)[1] कालीचरण जी के अतिरिक्त वर्मा जी के पिता के तीन भाई और थे। मुंशी शिवदीन सिंह जी ने अपने परिवार को मध्यमवर्ग के ढाँचे में ढाला। घर में धर्म की ओर रुचि थी और देवी-देवताओं की पूजा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।

इसके विपरीत वर्मा जी के ताऊ श्री कालीचरण 'कुछ बोहेमियन किस्म'[2] के आदमी थे। पूजा-पाठ में उन्हें कोई रुचि न थी। 'इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स' के पद पर होने के कारण बड़े रईसी ठाठ-बाट से रहते थे, कानपुर के प्रतिष्ठित एवं बिगड़े हुए रईसों से उनकी मित्रता थी।

भगवतीबाबू के पिता श्री देवीचरण श्रीवास्तव अपने परिवार में सबसे अधिक विचारवान, संयमी एवं बुद्धिमान व्यक्ति थे। उन्होंने अपने परिवार की गिरती हुई आर्थिक अवस्था को सम्हालने के लिए स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन के लिए वकालत प्रारम्भ की। इस आशा से कि वकालत कानपुर की अपेक्षा किसी छोटे स्थान पर अच्छी तरह चल सकेगी, उन्होंने उन्नाव जिले की शफीपुर तहसील में अपनी वकालत जमायी। किन्तु वे अपना उद्देश्य पूर्ण न कर सके क्योंकि सन् 1908 ई० की प्लेग महामारी ने उन्हें अपने निष्ठुर पंजों में समेट लिया। देवीचरण जी के दुखद अवसान के पश्चात् वर्मा जी का परिवार कठिन समस्याओं के भँवर-जाल में फँस गया। 'बड़े चाचा' कालीचरण उच्च पदासीन अफसर थे किन्तु वे खाने-पीने के शौकीन थे और अपने रईसी स्वभाव के कारण उन्हें घर की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति की विशेष चिंता न थी। उनके बाद घर में पुरुष - सदस्यों में बालक भगवतीचरण का ही स्थान था।

ऐसी स्थिति में वर्मा जी के एक दूसरे ताऊ (पिता जी के सौतेले भाई) श्री प्रयागदत्त जी ने उनके परिवार की विशेष सहायता की। उन्होंने वर्मा जी के पिता के जमींदारी के हिस्से को बेचकर रुपया बैंक में जमा कर दिया और उसके ब्याज से मिली बाईस रुपये महीने की आय से वर्मा जी के परिवार का खर्च किसी तरह चलने लगा।

1- वर्मा जी से हुई एक भेंटवार्ता के आधार पर।

2- धर्मयुग - 25 अगस्त 1963, पृष्ठ-17

वर्मा जी के वे ताऊ आर्यसमाजी विचारधारा को माननेवाले थे और कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के सम्पर्क में रहने के कारण नियमितरूप से भाँग का सेवन करते थे। उनके शुद्ध सात्विक जीवन में मांस-मदिरा सेवन और वेश्याओं का नृत्यगान इत्यादि देखना - सुनना पूर्णतया वर्जित था। इनके साथ वर्मा जी के परिवार का संयुक्त रहन-सहन तो नहीं था, किन्तु वे भगवतीबाबू पर अत्यधिक स्नेह रखते थे अत: उनके जीवन की सात्विकता ने वर्मा जी के बाल्यकाल में अपने गए गहरे संस्कार डाले थे।

बाल्यकाल :- ऐसा कहा जाता है कि बाल्यकाल में पड़े संस्कार एवं प्रभाव मनुष्य को जीवन-पर्यन्त प्रभावित रखते हैं। वर्मा जी के परिवार का वातावरण दो विपरीत रुचियों वाले व्यक्तियों की दिनचर्यायों से निर्मित हुआ था। एक ओर कालीचरण जी कायस्थ कुल परम्परा के अनुसार अंग्रेजी शराब स्वयं पीते थे और तीज-त्यौहार पर नाते- रिश्तेदारों एवं अतिथियों को पिलाते भी थे अत: बालक भगवतीचरण को नौ-दस साल की अवस्था से ही बिना झिझक शराब की बोतलें खरीदकर लाने का खूब अभ्यास हो गया था। दूसरी ओर प्रयागदत्त जी आर्य समाज के उपदेशों के साथ प्रसाद रूप में भाँग भी पिलाया करते थे। इस प्रसंग में वर्मा जी लिखते हैं - " एक दिन भाँग कुछ तेज हो गयी थी तो मुझे कुछ अधिक चढ़ गयी, यानी मैंने दुगुना खाना खाया और मैं करीब दो घण्टे तक हँसता रहा। माता जी को पता चला कि ताऊ जी मुझे रोज भाँग पिलाया करते हैं। फिर तो माता जी ने अपने कमरे से उच्च स्वर में ताऊ जी को जो-जो सुनायीं - उन दिनों परदा प्रथा जरा अधिक कड़ी थी, माता जी न ताऊ जी के सामने आती थीं न उनसे बोलती थीं - कि ताऊ जी की सिट्टी-पिट्टी गुम। इसके बाद भाँग का रोजवाला कार्यक्रम बन्द हो गया।"[1]

इस घटना के पश्चात् भाँग की लत से तो छुटकारा मिल गया किन्तु ताऊ जी की सात्विकता का ऐसा प्रभाव वर्मा जी पर छाया कि सात्विकता के प्रति एक अटूट आस्था उनमें आज भी विद्यमान है। इन ताऊ जी की मृत्यु के उपरांत बालक भगवतीचरण पर माँ के अतिरिक्त किसी का सीधा नियंत्रण नहीं रह गया और वह निरंतर स्वच्छंद एवं निर्भीक बनता चला गया। पितृविहीन बच्चों पर माँ का अतिरिक्त स्नेह होना स्वाभाविक ही था। माँ कभी उसके बहकने या गलत काम करने पर सामान्य वर्जन या अपना सुझाव देने के

1- धर्मयुग - 25 अगस्त 1963, पृष्ठ-17

अतिरिक्त उसके निरंकुश हृदय पर अपना शासन स्थापित न कर सकीं। पारिवारिक परिस्थितियों के अतिरिक्त वर्मा जी के जीवन में निर्द्वन्द्वता का संस्कार डालने में उनके मुहल्ले के वातावरण का भी पर्याप्त योगदान रहा है। " पटकापुर में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का अच्छा प्रभाव था। नागर जी के शब्दों में -" विद्या के चमत्कार और मूढ़ता एवं उद्दण्डता की चरम सीमा के दर्शन एक साथ ही होते थे।" इन्हीं संस्कारों में पलकर वर्मा जी ने अपने इस निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व का निर्माण किया जिसमें विनम्रता दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती। यह दृढ़ता कान्यकुब्ज की हेकड़ी का परिणाम है। पटकापुर के पहलवानी के वातावरण (जो भी वर्मा जी को काफी हद तक अपनी ओर प्रभावित किया) और वे बहुत दिनों तक कुश्ती लड़ते रहे। इसी प्रकार मुहल्ले में चलने वाले भजन-कीर्तन ने वर्मा जी को गाने-बजाने की ओर प्रेरित किया।"[1] इस सम्बंध में स्वयं वर्मा जी लिखते हैं -" मुझे याद आ रहा है कि मुझमें धार्मिक रुचि थी, देवी-देवताओं की पूजा में मन लगता था। संगीत से प्रेम था, सुरीला गला पाया था मैंने। रामायण का सस्वर पाठ करने में मुझे मजा आता था। मुहल्ले में धनुष-यज्ञ होता था, उसमें मैं रामायण-पाठ में सम्मिलित होता था।"[2]

कुश्ती, भजन-कीर्तन और रामायण पाठ के अतिरिक्त नौ-दस वर्ष के बच्चे भगवतीचरण के सुकुमार कंधों पर घर की सभी छोटी-मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति का भार भी आ पड़ा था। सब्जी-मंडी और बाजार से घरेलू सामान के झोले भर-भरकर खरीद लाना भी भगवतीचरण के बाल्य जीवन का नित्य का कार्यक्रम बन गया था। इन्हीं सब कार्यक्रमों के बीच स्कूल जाकर पढ़ना और गुल्ली-डंडा खेलना भी सम्मिलित थे। स्कूल जाकर पढ़ने की घटना मानों कोई उपेक्षित सी बात थी, घर के लोगों के लिए इसका कोई विशेष महत्व नहीं था। इन्हीं परिस्थितियों के बीच निरे बचपन से ही बालक भगवतीचरण को जीवन की विविधता एवं मीठे-कड़वे अनुभवों की शिक्षा प्राप्त होने लगी।

<u>शिक्षा-दीक्षा</u> :- वर्मा जी का विद्यारम्भ कानपुर के 'म्यूनिसिपल स्कूल' से हुआ। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है उनका विद्यारम्भ परिवार के लिए कोई विशेष उत्साहवर्द्धक घटना नहीं थी, बिल्कुल सामान्य रूप से उनका स्कूल जाना प्रारम्भ हो गया, किन्तु

1- उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा - ब्रजनारायण सिंह, पृष्ठ 10 से उद्धृत।

2- धर्मयुग - 25 अगस्त 1963 पृष्ठ-17

उत्तराधिकार में प्रकृष्ट बौद्धिक परम्परा प्राप्त होने के कारण वे प्रारम्भिक कक्षाओं में सबसे आगे रहते। खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं इतर गतिविधियों में उनकी कुशाग्र बुद्धि का परिचय बराबर प्राप्त होता था, किन्तु अनुकूल वातावरण के अभाव में वे अपने सह-पाठियों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में भी असमर्थ हो गये। घर की आर्थिक स्थिति ऐसी न थी कि पाठ्यक्रम की सभी पुस्तकें भी खरीदी जा सकतीं। पढ़ाई में पिछड़ जाने का एक कारण यह भी था कि वर्मा जी की शिक्षा एक ही स्कूल में स्थायी रूप से न हो सकी, उन्हें बार-बार स्कूल बदलने पड़े। उन्होंने क्रमशः म्यूनिसिपल स्कूल, आर्यसमाज स्कूल, थियोसाफिकल स्कूल और क्राइस्ट चर्च स्कूल में प्रारम्भिक विद्यार्जन किया।[1] इन्हीं विषम परिस्थितियों में उनकी बुद्धिमत्ता भी हार खा गयी तथा कक्षा सात में उन्हें प्रथम बार अनुत्तीर्ण होना पड़ा, वह भी मातृभाषा हिन्दी में। उनके हिन्दी के प्राध्यापक पं० जगमोहन 'विकसित' ने इस असफलता के लिए उन्हें डाटा भी और समझाया भी। उन्हें पाठ्यक्रम के अतिरिक्त हिन्दी पुस्तकें पढ़ने का सुझाव दिया। वर्मा जी के निरुत्साहित मन को इससे पर्याप्त प्रेरणा और बल मिला। हिन्दी के समुचित अभ्यास के लिए उन्होंने सबसे पहली पुस्तक 'भारत भारती' पढ़ी, इसे पढ़ते-पढ़ते उनके अन्दर का कवि भी बाहर आने को मचलने लगा और वह तुकबन्दी करने लगे। उनके प्रेरणास्रोत 'विकसित' जी उनकी कविताओं को देखते और उनकी अशुद्धियों को सुधार देते। इससे वर्मा जी का उत्साह बढ़ता गया और उन्हें कविताएँ लिखने का ऐसा शौक लगा कि वह अपने स्कूल की हस्तलिखित पत्रिका के नियमित लेखक बन गये। लिखने के साथ स्कूल के पुस्तकालय तथा इधर-उधर जहाँ से भी संभव होता ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ना उनका नित्य का नियम बन गया। साहित्यिक अध्ययन की अभिरुचि ऐसी जागृत हुई कि नवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने रेनाल्ड का 'लंदन रहस्य' और ड्युमा व ह्यूगो के अधिकांश उपन्यास पढ़ डाले।[2]

'विकसित' जी की प्रेरणा से वर्मा जी ने अपनी पहली कविता 'अमर शहीद' श्री गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा कानपुर से प्रकाशित पत्र 'प्रताप' में छपने के लिए दी जो पन्द्रह दिन बाद छप तो गयी, किन्तु पूर्णतः संशोधित होकर। इससे वर्मा जी को कुछ

1- वर्मा जी के दिनांक 21-8-74 के पत्र के आधार पर।

2- वर्मा जी के एक पत्र के आधार पर (दिनांकहीन)

क्लेश हुआ, किन्तु दूसरी बार से ही कविता को मूलरूप में प्रकाशित होता देखकर साहस और उत्साह बढ़ा । धीरे- धीरे उनकी कविताएँ `प्रताप` के अतिरिक्त जबलपुर की मासिक पत्रिका `शारदा` में भी प्रकाशित होने लगीं । साहित्यिक क्षेत्र की इस सफलता से प्रभावित होकर उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लिया । साहित्यिक अभिरुचि प्रगाढ़तर होती गयी, स्कूली शिक्षा (प्रमाण पत्रों की शिक्षा) गौण होती गयी ।कानपुर के साहित्यिक वातावरण के कारण उनकी साहित्यिक अभिरुचि को और अधिक बढ़ावा मिला तथा स्कूल की तरफ से उनका मन हटता गया ।

15 वर्ष की अवस्था से ही कानपुर की साहित्यिक गोष्ठियों में उन्हें सम्मानित स्थान प्राप्त होने लगा तथा अपनी `पुरमज़ाक तबीयत और हाजिरजवाबी`[1] के कारण उन्हें कानपुर के एक विशिष्ट साहित्यिक गुट में भी स्थान मिल गया और वह उसके एक महत्वपूर्ण सदस्य माने जाने लगे । इस सम्बंध में वर्मा जी स्वयं लिखते हैं - `कुल सोलह-सत्रह साल की उम्र थी मेरी, जब ----- विश्वम्भर नाथ शर्मा `कौशिक`, बालकृष्ण शर्मा `नवीन`, रमाशंकर अवस्थी, चण्डिका प्रसाद मिश्र ---- इन सबों से मेरी घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी । यह `प्रताप` से सम्बद्ध साहित्यिक गुट माना जाता था जो कानपुर में नवीन चेतना का प्रतीक था ।`[2]

वर्मा जी के उपर्युक्त साहित्यिक मित्र उनसे अवस्था में लगभग दुगने थे तथा इनकी गोष्ठियाँ 3-4 घण्टे तक चला करती थीं, उन्हें किसी परीक्षा की तैयारी तो करनी नहीं थी । वर्मा जी को इन बैठकों में इतना आनन्द आता कि वे यह भी भूल जाते कि उन्होंने अभी हाईस्कूल भी पास नहीं किया है तथा व्यावहारिक जीवन की सफलता के लिए ये परीक्षाएँ पास करना उनकी विवशता है । साहित्य के इस प्रेम तथा बड़े बब चाचा की बीमारी व मृत्यु के कारण वर्मा जी हाईस्कूल की परीक्षा पहली बार में उत्तीर्ण न कर सके । दूसरे वर्ष सन् 1921 में उन्होंने हाईस्कूल तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण किया ।

साहित्य का नशा वर्मा जी पर हावी होता जा रहा था । पाठ्यक्रम की शिक्षा उनके लिए मानो एक अजेय दुर्ग थी, जिसे जीत पाने की उनमें कोई अभिलाषा भी नहीं थी।

1- देखिए - भगवतीचरण - लेखक - अमृतलाल नागर - पृष्ठ-----१५

2- देखिए - धर्मयुग - 25 अगस्त 1963, पृष्ठ-17

साहित्यिक गोष्ठियों का उन्मुक्त वातावरण उन्हें बरबस अपनी ओर खींच ले जाता था - उधर परीक्षाएँ एक के बाद एक आती ही जाती थीं । एक ओर साहित्य का प्रेम पाठ्यक्रम की पुस्तकें पढ़ने नहीं देता था, दूसरी ओर परीक्षा के दिन निकट होते और कोई विशेष साहित्यिक आयोजन होने लगता तो वर्मा जी का रहा-सहा उत्साह भी समाप्त हो जाता । एक तो करेला दूसरे नीम चढ़ा जैसी विचित्र स्थिति आ जाती । सन् 1923 का वर्ष था - कानपुर में 'हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन होनेवाला था, अतः उसकी तैयारी में यथासाध्य परिश्रम इन्हें भी करना पड़ा । अधिवेशन हुआ - उसमें अपनी काव्य- रचना श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत की । सभी श्रोताओं के अतिरिक्त उच्च कोटि के साहित्यकारों द्वारा पर्याप्त प्रशंसा भी प्राप्त हुई, किन्तु उसी वर्ष इण्टरमीडिएट की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का अपयश भी मिला । इण्टरमीडिएट की परीक्षा भी दूसरे प्रयास में सन् 1924 में उत्तीर्ण कर सके ।

इण्टरमीडिएट की परीक्षा पास करने के पश्चात् उच्चतर अध्ययन हेतु वे इलाहाबाद गये । कानपुर का सिमटा-सिकुड़ा वातावरण यहाँ समाप्त हो गया तथा विश्वविद्यालय का स्वच्छंद वातावरण एक विस्तृत फलक में उनके सम्मुख उपस्थित हुआ । इलाहाबाद में बीता समय वर्मा जी के साहित्यिक जीवन की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है । घर की अधिकांश पूँजी जोड़-तोड़कर उनकी उच्चतर शिक्षा का प्रबंध किया गया था अतः यह स्वाभाविक ही था कि वर्मा जी उसकी महत्ता को समझते तथा परिश्रमपूर्वक अध्ययन प्रारम्भ करते । अध्ययन उन्होंने किया किन्तु पाठ्यक्रम की शिक्षा की अपेक्षा जीवन की व्यावहारिक शिक्षा का पलड़ा ही अधिक भारी रहा । वर्मा जी के अन्तर्मन में बसी अल्हड़ता, मस्ती एवं विनोदप्रियता यहाँ के स्वच्छंद वातावरण में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी - इस सम्बंध में उनके विश्वविद्यालय-प्रवेश की कहानी का उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा - 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रवेश की कहानी भी कम रोचक नहीं है । ऐसे बिरले ही विद्यार्थी होंगे जो टाइमटेबल के अनुसार विषयों का चुनाव करते हों । किस घंटे में क्या पढ़ाया जाता है, उसी के अनुसार विषयों को चुनना चाहिए । इसीलिए पहले तीन घंटों में जो- जो विषय पढ़ाए जाते थे, वही वर्मा जी ने चुन लिए और इस प्रकार अंग्रेजी, गणित और इतिहास उनके बी० ए० के विषय थे, पर गणित विषय ले लेने पर जो दूसरी कठिनाई उनके सामने आई, वह थी म्योर कालेज जाने की । इतनी दूर बिना साइकिल के जाना कठिन था, इसलिए उन्हें गणित विषय छोड़ देना पड़ा । सौभाग्य से उसी वर्ष हिन्दी में बी० ए० की कक्षाएँ खुल गयी थीं और उसका अध्ययन भी दूसरे घंटे

में होता था। वर्मा जी को मनमाँगी मुराद मिल गई और उन्होंने फट से गणित छोड़कर हिन्दी में नाम लिखा लिया।[1] इस प्रकार वर्मा जी ने हिन्दी, अंग्रेजी और इतिहास लेकर सन् 1926 ई० में बी० ए० पास कर लिया। प्रथम तीन घंटों में पढ़ाए जानेवाले विषय लेने का संभवत: एक कारण यह भी रहा होगा कि इसके बाद उन्हें साहित्यिक गतिविधियों के लिए पर्याप्त समय मिल जाता होगा। साहित्यिक अभिरुचि, साहित्यिक मित्र मण्डली एवं साहित्यिक गतिविधि का तो निरंतर विकास हो ही रहा था, साहित्य के क्षेत्र में उन्हें पर्याप्त ख्याति भी प्राप्त होने लगी थी। इस ख्याति को उनके अनुत्तीर्ण होने से धक्का न लगे, संभवत: इसीलिए उन्होंने बिना रुके एक के बाद एक डिग्रियाँ प्राप्त करने का संकल्प कर लिया होगा। इसके अतिरिक्त जीवनानुभव द्वारा प्रसूत विवेक ने भी उन्हें शीघ्रातिशीघ्र अपना विश्वविद्यालयीय अध्ययन समाप्त कर लेने की प्रेरणा दी अत: उन्होंने सन् 1927 ई० में एल० एल० बी० प्रथम वर्ष एवं एम० ए० (हिन्दी) प्रथम वर्ष एक साथ ही उत्तीर्ण कर लिए। इतना ही नहीं, एम० ए० प्रथम वर्ष में उन्हें प्रथम श्रेणी भी प्राप्त हुई। अब अगले वर्ष समस्या आयी कि एम० ए० द्वितीय वर्ष समाप्त करें अथवा एल० एल० बी० की फाइनल परीक्षा दें, क्योंकि यह पाठ्यक्रम की शिक्षा की अन्तिम अवस्था थी और इसके पश्चात् उन्हें जीवकोपार्जन की समस्या का सामना करना था। एम० ए० द्वितीय वर्ष समाप्त करते तो निश्चित रूप से किसी कालेज में प्राध्यापक बनना पड़ता और प्राध्यापक वह बनना नहीं चाहते थे क्योंकि इलाहाबाद में अध्यापकों की स्थिति देखकर उन्हें अध्यापन कार्य से वितृष्णा हो गयी थी। अत: वर्मा जी ने अन्तिम निर्णय लेकर एल० एल० बी० का द्वितीय वर्ष पूरा किया और जीवकोपार्जन के लिए पुन: कानपुर वापस आ गये। एक बार सोचा कि एम० ए० फाइनल भी कर लें, किन्तु घर की सारी पूंजी समाप्त हो चुकी थी तथा कुछ कर्ज भी चढ़ गया था अत: संघर्षमय जीवन का श्रीगणेश करने के लिए कूच कर ही दिया।

पारिवारिक जीवन :- पूर्ववर्ती विवरण से प्रकट है कि वर्मा जी का पारिवारिक जीवन प्रारम्भ में बड़े उतार-चढ़ाव से भरा हुआ था, एक के बाद एक पारिवारिक व्यक्तियों की मृत्यु से व्यक्ति का नियतिवादी या भाग्यवादी हो जाना स्वाभाविक है, विशेषकर

1- उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा : ले० ब्रजनारायण सिंह पृष्ठ 12-13 से उद्धृत।

बालमन पर तो इन आकस्मिक घटनाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है । बचपन में मस्तिष्क में जो संस्कारों ~~का~~ के अंकुर फूटते रहते हैं, वही जीवन में विकसित ~~लेकर आमूल जम जाया~~ होते हैं । वर्मा जी के बचपन की विषम परिस्थितियाँ उनको कट्टर नियतिवादी बनाने में सफल हुईं । प्राय: बच्चे ऐसी स्थितियों में बहुत अधिक अन्तर्मुखी और निराश हो जाया करते हैं, किन्तु वर्मा जी का हँसमुख और अलमस्त स्वभाव उन्हें इन संघर्षों में भी अडिग रख सका । फिर परिवार के अनेक सदस्यों की असामयिक मृत्यु के उपरांत पूज्या माँ का वरदहस्त उन पर बना रहा जो उन पर ममता का सिंचन करता रहा और उनका प्रारम्भिक पारिवारिक जीवन एकदम शुष्क होने से बच गया ।

वर्मा जी का परिवार यों तो सुशिक्षित था एवं अधिक पुराणपंथी भी न था, किन्तु तत्कालीन प्रथा के अनुसार उनका विवाह मात्र 20 वर्ष की आयु में उस समय कर दिया गया जबकि वह इंटरमीडिएट की परीक्षा देने वाले थे । उनका विवाह हुआ, लेकिन जीवन की इतनी महत्वपूर्ण घटना उनके साहित्यिक नशे के आगे अत्यन्त साधारण घटना का महत्व ही पा सकी । इसके पश्चात् वर्मा जी इलाहाबाद अपनी आगे की शिक्षा पूरी करने के लिए चले गये और वहाँ विश्वविद्यालय के स्वच्छंद वातावरण ने उन्हें पूर्णतया एक छात्र बना दिया । वे अपने वैवाहिक उत्तरदायित्व को किसी सीमा तक भुलाए ही रहे । उस समय की संयुक्त परिवार- प्रणाली ने इसमें एक सहायक तत्व बनकर कार्य किया । सन् 1933 में उनकी पहली पत्नी का निधन हो गया और एक वर्ष पश्चात् उनका दूसरा विवाह हो गया । वर्मा जी ने एक बार भेंटवार्ता में बताया कि उनका वैवाहिक जीवन उनके साहित्यिक पक्ष के लिए न नैराश्यपूर्ण रहा और न अत्यधिक प्रेरणादायक ही, किन्तु यह बात अक्षरश: सत्य प्रतीत नहीं होती । वर्मा जी की धर्मपत्नी का सहनशील स्वभाव परोक्ष रूप से सदैव उन्हें 'ऊँचाई' की ओर ले गया । वह कहती हैं - 'हर हाल और हर परिस्थिति में मस्त रहते हैं ये । कितनी बार ऐसी-ऐसी विषम परिस्थिति में भी ये मस्त और संतुष्ट रहे हैं, जब मैं टूटने- टूटने को हो जाती थी । कच्ची गृहस्थी, बच्चे बीमार, और ये नौकरी से इस्तीफा देकर खड़े हो जाते थे । 'नौकरी छोड़कर आया हूं' सुनकर मुझे चक्कर - सा आने लगता था, और कुछ देर के लिए मैं सिर थामकर बैठ जाती थी । एक दिन के लिए ये भी कुछ चिंतित से नजर आते थे, किन्तु इनका वह चेहरा बड़ा अपरिचित, निरीह और अजीब-अजीब- सा लगता था । और मैं सारी चिंताओं को

दूर फेंक सामान्य हो जाती थी । वर्मा जी के मन से भी एक बोझ उतर जाता था ।---- इनका यह उन्मुक्त स्वभाव उन्हें आज तक किसी बंधन में नहीं बाँध पाया । नौकरी इन्होंने बहुत कम की । और जब की, उन दिनों न तो ये कभी संतुष्ट रहे और न प्रसन्न । मैं भी समझती हूँ, एक सफल लेखक के लिए नौकरी एक बंधन ही है । इसीलिए मैंने अनेक कष्ट सहकर, किसी प्रकार गृहस्थी चलायी ; लेकिन कभी इन्हें नौकरी करने को विवश नहीं किया । हम ही जानते हैं कि किन आर्थिक संघर्षों में हमने अपनी यह रुचि और निष्ठा बनाए रखी है ।"1

श्रीमती वर्मा का यह विवेक और समझदारी ही वर्मा जी को गृहस्थी के जंजाल से मुक्त रख सकी । श्रीमती वर्मा की सहनशीलता एवं साहस सराहनीय है जो वर्मा जी को अपना घर-संसार ' पैर की बेड़ियाँ ' न लगा । इसके साथ-साथ वर्मा जी ने भी जीविका के अस्थायित्व के उपरांत अपने परिवार को आर्थिक संघर्ष की भट्टी में झोंककर चैन की साँस कभी नहीं ली । अत्यधिक स्वाभिमानी होने पर भी वे अपने परिवार के सुख के लिए कहीं न कहीं कुछ कार्य करते ही रहे । वर्मा जी के समृद्ध साहित्यिक जीवन का सारा श्रेय पति-पत्नी की पारस्परिक 'अन्डरस्टैण्डिंग ' को ही जाता है । अब तो एक जमाना बीत गया, संघर्ष और आर्थिक कष्ट के बादल छँट गये हैं । कितने ही वर्षों से उनका परिवार उनकी 'चित्रलेखा ' (वर्मा जी के निवास का नाम) की क्रोड़ में किलकारी मारता हुआ बड़े उल्लास के साथ ~~वर्मा जी के~~ उनके दीर्घायुष्य की कामना करते हुए अपना समय व्यतीत कर रहा है ।

व्यावसायिक जीवन :- पहले ही कहा जा चुका है कि वर्मा जी ने सन् 1927 में एम० ए० प्रथम वर्ष उत्तीर्ण करने के पश्चात् द्वितीय वर्ष इसलिए नहीं किया कि कहीं उन्हें अध्यापक न बन जाना पड़े । सन् 1928 में एल० एल० बी० करने के पश्चात् वर्मा जी ने जीवकोपार्जन के लिए कानपुर में वकालत प्रारम्भ कर दी । किन्तु युवावस्था की अल्हड़ता, विश्वविद्यालय से तुरन्त निकले युवक की स्वच्छंदता एवं अपने साहित्यिक रुझान के कारण वर्मा जी का मन व्यवसाय के बंधन में बँध नहीं पा रहा था । वे मुवक्किलों के मुकदमे ले लेते, उनकी पैरवी भी करते, किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता कि किसी मुकदमे की पेशी की तारीख का स्मरण ही न रहता अथवा 'मूड ' आ जाने पर मुकदमे के समय कविता बनाने में तल्लीन

1- देखिए - धर्मयुग- 3 सितम्बर 1972

हो जाते और मुकदमे का ध्यान ही न आता । एक बार तो एक भड़कीले स्वभाव के मुवक्किल से उनकी जबरदस्त मुठभेड़ भी हो गयी । कई बार मुकदमों के बयाने भी वापस करने पड़े ।[1] इन्हीं सब कारणों से उनका मन कानपुर से ऐसा उचटा कि वे कानपुर छोड़कर हमीरपुर, जहाँ उनकी ननिहाल है, चले गये और वहाँ भी वकालत शुरू की किन्तु यहाँ भी वह जम नहीं पाये । वास्तविकता यह थी कि वकालत का पेशा उनकी साहित्यिक अभिरुचियों के पूर्णतया विपरीत था । कानपुर छोड़ने के पहले ही उनका पहला उपन्यास 'पतन' प्रकाशित हो चुका था, उसे विशेष प्रसिद्धि तो नहीं मिल सकी, किन्तु उसके प्रकाशन से वर्मा जी को यह विश्वास अवश्य हो गया कि वह कविता के अतिरिक्त कथा-साहित्य पर भी अपनी लेखनी चला सकते हैं । इस सम्बंध में उन्होंने लिखा है -'अन्दर से शायद प्रेरणा थी कि उपन्यास के क्षेत्र में अपने को स्थापित करूँ,'[2] इसी प्रेरणावश उन्होंने हमीरपुर में ही 'चित्रलेखा' का लेखन प्रारम्भ किया । उन्हीं दिनों अनायास मद्री के राजा श्री बजरंगबहादुर सिंह से वर्मा जी का परिचय हो गया । उन्होंने 'चित्रलेखा' के कुछ अंश राजा साहब मद्री को सुनाए तो वे इतने प्रभावित हुए कि अपने आश्रय में वकालत करने के लिए मद्री ले गये । वर्मा जी ने वहाँ वकालत के साथ-साथ 'चित्रलेखा' के लेखन का कार्य बड़ी तीव्रता से प्रारम्भ कर दिया । राजा साहब को साहित्यानुरागी मानकर वर्मा जी ने मन ही मन कुछ साहित्य-सेवा करने की योजना बनायी । उन्होंने एक प्रकाशन - संस्था खोलने का प्रस्ताव राजा साहब के समक्ष प्रस्तुत किया । राजा साहब ने उसे स्वीकार भी कर लिया, किन्तु राजा साहब के कारिन्दे राजा पर किसी सामान्य से आदमी का इतना अधिक प्रभाव सहन नहीं कर सकते थे अतः इस योजना की असफलता के लिए जी-जान से लग गये । इधर वर्मा जी भी यह अनुभव करने लगे थे कि मद्री-नरेश उन्हें ~~वर्मा जी~~ को कुछ इसी प्रकार अपने आश्रय में रखना चाहते थे जैसे कि प्राचीन काल में राजा-महाराजा अपने दरबार में कवियों और विद्वानों को रखते थे । वर्मा जी की स्वाभिमानिनी प्रकृति इस दयादानवाली स्थिति को स्वीकार न कर सकी और उन्होंने बड़ी निर्भीकता से राजा साहब से अपना सम्पर्क तोड़ते हुए आर्थिक कठिनाइयों को गले से लगा लिया । यहीं से वर्मा जी के व्यावसायिक जीवन से वकील का रूप सदा-सदा के लिए तिरोहित हो गया, किन्तु वकीलों की तर्कपूर्ण शक्ति एवं बहस मुबाहसे

1- देखिए - उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा - ब्रजनारायण सिंह, पृष्ठ 13

2- वर्मा जी के एक पत्र के आधार पर (दिनांकहीन)

की प्रवृत्ति का परिचय उनके कथा-साहित्य में आज भी मिल जाता है ।

आर्थिक कठिनाइयाँ मुँह फैलाए खड़ी थीं, वर्मा जी बार-बार स्वतंत्र लेखक के रूप में प्रतिष्ठित होने की योजना बनाते थे, किन्तु उसमें उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिलती थी । नौकरी न लग जाए - इस भय से कहीं प्रार्थना -पत्र भी न देते थे, किन्तु इसी बीच `चित्रलेखा` प्रकाशित हो गयी ।`चित्रलेखा` अपनी लोकप्रियता के कारण वर्मा जी के जीवन में `भाग्यलक्ष्मी` सी बनकर प्रविष्ट हुई । सन् 1937 के आरम्भ में जब वर्मा जी के जीवन में आर्थिक संघर्षों के कारण एकदम टूटने की सी स्थिति आ गयी थी, उन्हें फिल्म कार्पोरेशन, कलकत्ता से आमंत्रण मिला । कार्पोरेशन के अधिकारियों ने `चित्रलेखा` से प्रभावित होकर ही वर्मा जी को आमंत्रित किया था । लगभग एक वर्ष तक उन्होंने कार्पोरेशन को अपनी सेवाएँ प्रदान कीं, किन्तु कुछ पारिवारिक उलझनों के कारण उन्हें वापस प्रयाग आना पड़ा । प्रयाग में प्रकाशन संस्था की पुरानी योजना को पुन: एक प्राइवेट लिमिटेड के रूप में प्रारम्भ किया, किन्तु भाग्यचक्र की तीव्र गति में वह कार्य व अधूरा ही रह गया और वर्मा जी पुन: कलकत्ता पहुँच गये । कलकत्ता फिल्म कार्पोरेशन में काम करने के कारण उन्हें कलकत्ता के वातावरण का पूर्ण परिचय प्राप्त हो गया था अत: सन् 1939 में कलकत्ता के साप्ताहिक पत्र `विचार` के सम्पादक के रूप में कार्य करने का उन्होंने निर्णय कर लिया । पत्र के अत्यंत नवीन एवं निराले ढंग ने उन्हें एक यशस्वी सम्पादक के रूप में प्रतिष्ठित किया, किन्तु वहाँ भी स्वाभिमान के कारण आर्थिक दृष्टि से विशेष लाभ न हो सका । सन् 1942 में `विचार` की स्थिति डाँवाडोल होने लगी, किन्तु इसी बीच वर्मा जी को एक बार पुन: चित्रपट जगत से निमंत्रण मिला । बम्बई टाकीज ने उन्हें कथा सीनेरियो लेखक के रूप में नियुक्त कर लिया । फिल्मी कथाकार के रूप में ही सही वर्मा जी को साहित्य-सेवा का अवसर फिर मिला । इस बीच सन् 1941 में पं० केदार शर्मा `चित्रलेखा` पर फिल्म भी बना चुके थे तथा वर्मा जी के तीन उपन्यास (पतन, चित्रलेखा तथा तीन वर्ष) हिन्दी साहित्य-जगत के समक्ष आ चुके थे, इनके प्रकाशन से वर्मा जी का कथाकार, कवि रूप को पीछे छोड़कर सम्पूर्ण उत्साह से गतिशील हो उठा । बम्बई आकर उन्होंने `टेढ़े मेढ़े रास्ते`, जिसे कलकत्ता में लिखना प्रारम्भ किया था, को संपूर्ण किया । वर्मा जी बम्बई में कार्य कर रहे थे, किन्तु उन्हें अपनी जीविका से संतोष यहाँ भी नहीं मिला । बम्बई का वातावरण उन्हें नितांत अरुचिकर और अपने संस्कारों से सर्वथा विपरीत प्रतीत हो रहा था, ऐसा लगता था मानो वह वहाँ स्वयं को घुलामिला नहीं पा रहे थे । यद्यपि

बम्बई आकर उनकी आर्थिक स्थिति काफी सुधर गयी थी, तथापि नवीन परिवेश के अनुरूप अपने को पुन: ढालना वर्मा जी को काफी कष्टसाध्य अथवा असंभव-सा ही प्रतीत हो रहा था। लेकिन आर्थिक निश्चिंतता के कारण उनका लेखन-कार्य तेजी से चल रहा था। बम्बई में ही उन्होंने अपनी बृहद् कथाकृति 'भूले बिसरे चित्र' की रूपरेखा बना डाली तथा उसका प्रथम परिच्छेद भी समाप्त कर लिया।

सन् 1947 के अंत में बाम्बे टाकीज़ समाप्त हो गई, इसके पश्चात् बम्बई के फिल्म क्षेत्र में बने रहना- वर्मा जी को असंभव प्रतीत हुआ। कोई स्वाभिमानी कथाकार बहुत समय तक फिल्म क्षेत्र में रह भी नहीं सकता, क्योंकि वह अपनी मौलिक कृति की कपालक्रिया को कदापि सहन नहीं कर सकता। हिन्दी के कई अन्य साहित्यकारों की भाँति वर्मा जी ने भी फिल्म-क्षेत्र को हाथ जोड़ दिये।

तभी सन् 1948 ई० के प्रारम्भ में वर्मा जी को लखनऊ के ख्यातिप्राप्त दैनिक 'नवजीवन' के प्रधान सम्पादक के रूप में आमंत्रण मिला। वर्मा जी नियतिवादी तो हैं ही, उनके जीवन के सूत्र को पकड़कर मानो कोई अदृश्य सत्ता कठपुतली का-सा खेल खेल रही थी। वह 4-5 साल से अधिक कहीं ठहर ही नहीं पाते थे। संभवत: उनके अन्तस में छिपा कोई यायावर जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर ठहरकर उसे जी लेना चाहता था, या उनका साहसी मन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन प्रयोग कर लेना चाहता था। वर्मा जी 'नवजीवन' पत्र के सम्पादक बने और अपनी रुचि के अनुकूल होने के कारण इस कार्य को बड़ी तन्मयता से करने लगे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् बड़े उत्साह एवं उमंग के दिन थे वे। वर्मा जी इस पत्र के माध्यम से भारतीय जनता के मन में नये प्राण फूँक देना चाहते थे, किन्तु व इस बार राजनीति की दलदल ने उन्हें चैन न लेने दी और उन्होंने एक वर्ष के अन्दर ही अन्दर 'नवजीवन' को छोड़ दिया। फिर एक वर्ष तक वह लगभग बेकार रहे।

इस समय तक वर्मा जी हिन्दी उपन्यासकार के रूप में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके थे। सन् 1950 ई० में उन्हें लखनऊ के आकाशवाणी केन्द्र से आमंत्रण मिला। वे हिन्दी सलाहकार के पद पर कार्य करने लगे। यहीं उन्होंने सुगम संगीत एवं अन्य साहित्यिक कार्यक्रमों के निर्देशक के रूप में भी कार्य किया। वर्मा जी की बहुमुखी प्रतिभा उन्हें कभी बेकार नहीं रहने देती थी और वह जिस कार्य को भी अपने हाथ में लेते थे उसमें मानो चार चाँद लग जाते थे। सन् 1953 से 1955 तक वर्मा जी आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से सम्बद्ध रहे और अपने इस कार्यकाल में उन्होंने नाटक के क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय

प्रयोग किये । सन् 1955 में वह पुन: लखनऊ वापस आ गये तथा सन् 1957 में उन्होंने आकाशवाणी की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया ।

यह कहा जा सकता है कि किसी के बंधन में रहकर कार्य करना वर्मा जी के स्वच्छंद स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल था । उनका मौलिक कलाकार किसी दूसरे के नियंत्रण या निर्देश का पालन करने में सदैव असमर्थता का अनुभव करता था, अत: वह कभी भी एक स्थान पर टिककर नौकरी नहीं कर सके । उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि 'नौकरी के बन्धनों में रहकर साहित्य- सृजन का काम करना मेरे लिए असम्भव होगा ।'[1] इसलिए सन् 1957 ई० से स्वतंत्र साहित्यकार के रूप में ही वे जीविकोपार्जन कर रहे हैं । नौकरी करते समय न कभी उन्हें आर्थिक सम्पन्नता ही मिल पायी और न साहित्य-सेवा का संतोष । नौकरी छोड़ने के बाद से वे निरंतर 2-3 वर्षों के अंतराल से एक नया उपन्यास लिख डालते हैं । इससे उन्हें आत्मिक संतोष भी प्राप्त होता है और इन उपन्यासों से इतनी रायल्टी भी मिल जाती है कि उनका परिवार बड़े आराम से रह सकता है । साहित्य-सृजन को उन्होंने अपनी आजीविका उपार्जन का साधन बना लिया है- इसे वर्मा जी ने एक नहीं अनेक जगह स्वीकार किया है, किन्तु इस स्वीकृति में भी उनकी विवशता एवं क्षोभ की अकथ कहानी व्यक्त हो जाती है । एक जगह उन्होंने लिखा है -

'साहित्य सृजन तो बस मेरी मजबूरी
क्या कहूँ कि जग में पेट बड़ा ही पापी ।'[2]

वर्मा जी ने अपना साहित्यिक जीवन कविता लिखने से प्रारम्भ किया था, किन्तु आज वह अधिकांशत: उपन्यास ही लिखते हैं । इसका एकमात्र कारण वे स्वयं 'अर्थ' को मानते हैं - 'कविता के क्षेत्र से मैं करीब-करीब अलग हो गया हूँ, किन्तु अपने अन्दर वाले कवि को अलग नहीं कर सका । जहाँ तक कविता की विधा का प्रश्न है, सामाजिक रूप से वह ह्रासोन्मुख है, क्योंकि गद्य का काफी अधिक विकास हो चुका है । कविता के पाठकों के अभाव के कारण कविता की पुस्तकें बिकती नहीं ।'[3] तथा 'मैं उपन्यास की विधा में अपने को अधिक सशक्त-समर्थ पाता हूँ, कहानी की विधा में उतना नहीं । लेकिन यह कहकर

1- धर्मयुग 25 अगस्त 1963, पृष्ठ-18

2- नवभारत टाइम्स(दैनिक), बम्बई, गुरुवार 7 जून 1973

3- सारिका - अप्रैल 1971, पृष्ठ-88

शायद मैं अर्ध सत्य का ही दोषी बन रहा हूँ क्योंकि कहीं मेरे अन्दर कला के द्वारा या साहित्य के द्वारा आजीविका उपार्जन करने का प्रश्न भी शायद है । कहानी के संग्रह बिकते नहीं । विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं द्वारा कहानी पर जो पारिश्रमिक मिलता है, वह अपर्याप्त है, इसलिए भी कहानी लिखने की प्रेरणा मुझे नहीं मिलती । आप मुझे एक दृष्टि से भौतिकवादी कम्युनिस्ट कह सकते हैं लेकिन मैं किसी काम की प्रथम प्रेरणा आजीविका को ही समझता हूँ और आजीविका का रूप है, अर्थ ।'[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् 1957 ई० से अद्यावधि वर्मा जी ने अधिकांशतः 'उपन्यास-लेखन' को ही अपना व्यवसाय बना लिया है- यह सत्य है, भले ही वह कटु क्यों न हो और वर्मा जी की विवशता हो ।

वर्मा जी में अदम्य जीवनी शक्ति है, उसी के कारण वे जीवन में आने वाले अनेकानेक संघर्षों में कभी परास्त नहीं हुए । अपनी युवावस्था में जो संकल्प उनके मन में जागा था उसे उन्होंने कालचक्र में आनेवाले अनेक प्रहारों को बड़ी निर्भीकता एवं साहस से सहा है । इस प्रसंग में श्री अमृतलाल नागर का यह कथन सटीक ही कहा जायगा -' जीवन की बड़ी-बड़ी पराजयों के कालकूट को हिन्दी का यह भोला भण्डारी और मस्त कलाकार न जाने कितनी बार हँस-हँसकर पचा चुका है ।'[2]

जीवन में कभी न टूटनेवाली शक्ति उन्हें आत्मविश्वास से ही प्राप्त हो सकी है । मस्ती और आत्मविश्वास से भरा वर्मा जी का व्यक्तित्व स्वयं में एक अध्ययन की अपेक्षा रखता है ।

व्यक्तित्व निरूपण :- जीवन के में कभी न झुकनेवाला, किसी से हार न खानेवाला तथा दूसरों को सदैव प्रभावित करनेवाला वर्मा जी का व्यक्तित्व अत्यंत प्रखर एवं तेजस्वी है । वर्मा जी में ऐसे कौन से गुण हैं जो अनायास ही अपने सामने वाले को आकर्षित करते हैं ? इन गुणों की विवेचना करने के पूर्व हम 'व्यक्तित्व क्या है ?' - इस सम्बंध में कुछ सामान्य चर्चा कर लेना समीचीन समझते हैं ।

1- सारिका - अप्रैल 1971, पृष्ठ-88

2- भगवतीचरण वर्मा- लेखक- अमृतलाल नागर, पृष्ठ- 9

`आंग्ल शब्द `पर्सनैलिटी `(Personality ) का निर्माण लैटिन शब्द `परसोना`(Persona ) से हुआ है, जिसका तात्पर्य उस `मास्क`(Mask) अर्थात् बुरके से है जिसे अभिनेता रंगमंच पर अभिनय करते समय पहनते थे और उस बुरके के द्वारा अपने पृथक् व्यक्तित्व का प्रभाव दर्शक पर डालते थे। पर्सनैलिटी या व्यक्तित्व का अर्थ इसी समग्र प्रभाव का द्योतन करता है। पाश्चात्य विद्वान् डेशियल(Dashiell) ने लिखा है -

"An individual's personality is the " total picture of his organized behaviour, especially as it can be characterized by hi s fellow men in a consistent way " 1.

`व्यक्ति के सम्पूर्ण आचरण के समग्र चित्र` को अधिक स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक नारमन एल० मन ने `व्यक्तित्व` की परिभाषा इस प्रकार दी है -

"Personality may be defined as the most characteristic integration of an individual's structures, modes of behaviour,interests,attitudes, capacities,ablities and aptitudes."2

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं से स्पष्ट है कि व्यक्ति के विभिन्न गुणों,आकार प्रकार, रूप रंग, व्यवहार, अभिरुचियों, दृष्टिकोणों, योग्यताओं एवं क्षमताओं की समष्टि से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अत: हम कह सकते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों पर अपनी तात्कालीक अथवा दीर्घकालिक जो भी छाप छोड़ता है, वही उसका व्यक्तित्व है।

व्यक्तित्व के दो पक्ष हो सकते हैं - वाह्य पक्ष एवं आन्तरिक पक्ष। इन्हीं दोनों पक्षों के परिप्रेक्ष्य में हम वर्मा जी के व्यक्तित्व का अनुशीलन करेंगे।

<u>वाह्य पक्ष</u> :- वर्मा जी की वाह्य रूपाकृति में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उन्हें असाधारण अथवा असामान्य सिद्ध करे, किन्तु कुछ ऐसा अवश्य है जो अपने सम्पर्क में आनेवालों को अपनी ओर आकर्षित करता है। अति सामान्य कद, गेहुआं वर्ण, उन्नत ललाट, खिचड़ी बाल, आंखों पर चश्मा, वृद्धावस्था के कारण कृश काया-यही वर्मा जी की वाह्य छवि है।

अपने सम्बंध में उन्होंने लिखा है (जब उनकी अवस्था 60 वर्ष थी) -` मैं आईने के सामने खड़ा हूँ- और अपने रूप से मुझे असन्तोष नहीं। नाटा-सा, मरेबदन का। मुँह पर झुर्रियाँ पड़ने लगी हैं, बाल आधे से अधिक सफेद हो गये हैं। वैसे नाक-नक्श से दुरुस्त हूँ।

---

1. Child Development by Elizabeth B Hurlock,page 531 से उद्धृत।
2. Psychology by Norman L.Munn,page 457.

और मैं अपने को सुन्दर भी समझता हूँ। लेकिन आईने के सामने खड़े होने के बाद हर आदमी अपने को सुन्दर समझता है - यह मनोवैज्ञानिक गुत्थी शायद मुझमें भी है।

बचपन में मैं गोरे रंग का था, मेरी माता जो अभी जीवित हैं मुझे बतलाया करती हैं, पर अब मेरा रंग पक्का हो गया है, और अगर साँवला नहीं कहला सकता तो पक्का गेंहुआ तो अवश्य ही है। आँखों पर चश्मा चढ़ा हुआ है। इससे यह स्पष्ट है कि मैंने जिन्दगी संघर्षों में बितायी है - धूप में तपा हूँ, ठंड में ठिठुरा हूँ। और मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि मेरे मुख पर एक प्रकार की कठोरता-सी आ गयी है। आँखों की ज्योति कम हो गयी है, लेकिन उनमें चमक अब भी मौजूद है।'[1]

वास्तविकता तो यह है कि वर्मा जी की आँखों की चमक, उनमें आत्मविश्वास की झलक ही वह चीज़ है जो सामने वाले को अपनी ओर आकर्षित करती है। उनकी आँखों में एक प्रकार की तेजस्विता तो झलकती है ही रहती है, साथ ही 70-72 वर्ष की अवस्था में भी उनकी चेतनता एवं तत्परता दर्शनीय है। वृद्धावस्था में भी किसी प्रकार के आलस्य और शैथिल्य के दर्शन उनमें नहीं होते। उनके कार्य-व्यापार में ऐसी स्फूर्ति और तेजी दिखती है जो नवयुवकों के लिए भी प्रेरणादायक है। इन पंक्तियों को लिखते समय हमें अचानक वह संध्या याद आ जाती है जब हम उनसे मिलने अचानक बिना किसी पूर्व सूचना के पहुँच गये थे। लगभग डेढ़-दो घण्टे विभिन्न विषयों पर वार्तालाप होता रहा और हमारे चलने के समय वे भी बिना किसी तैयारी के इतनी तत्परता से हमारे साथ ही अपने आवास से लगभग 2 मील दूर के बाजार के लिए चल पड़े, मानो पहले से वहाँ जाने के लिए ही तैयार हुए हों। बस में हम लोग बैठे तो पुनः बातों की झड़ी लग गयी और जब हम उनसे अलग होने लगे तो उन्होंने बिना किसी भूमिका के तपाक से हाथ जोड़ दिए। उनकी इस स्फूर्ति एवं ताज़गी के सम्बंध में उनके घनिष्ठ मित्र श्री अमृतलाल नागर का कथन द्रष्टव्य है -

'एक पोते- दोहतों से बस नहीं चलता, दूसरे अंततोगत्वा 'नेता' से (नागर जी कुछ प्रेमवशात् और कुछ वर्मा जी के स्वभाव के कारण वर्मा जी को नेता कहते हैं)। वो घर आकर ताजगी दे जायेंगे। भगवती बाबू को हरदम ताजा बने रहने का रोग है। इस मामले में पक्के नारदमुनि हैं वे।'[2]

1- सारिका : जनवरी 1963, पृष्ठ 9

2- कादम्बिनी - फरवरी 1966, पृष्ठ 35

वेशभूषा :- वर्मा जी की उपर्युक्त ताजगी एवं स्फूर्ति का कुछ श्रेय उनकी सहज सरल किन्तु लकदक वेशभूषा को भी है। वर्मा जी प्राय: कुरता और पायजामा ही पहनते हैं। बढ़िया धुला हुआ स्वच्छ कुरता पायजामा उन्हें ताज़गी एवं गरिमा तो देता है, किन्तु उसमें व्यर्थ के आभिजात्य -प्रदर्शन का आरोपण नहीं होता।

शीत ऋतु में स्वेटर एवं मफलर पहनना तो स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त ढीले पायजामे पर शेरवानी पहनना उन्हें विशेष रुचिकर प्रतीत होता है। ऋतु के अनुसार पैरों में `नागरा` जूता तथा चप्पल पहनते हैं। यह तो उनकी आजकल की पोशाक है। युवावस्था में वह अचकन के ऊपर तिरछी टोपी भी लगाया करते थे, जो उनकी मुखमुद्रा में एक बाँकपन ला देती थी ; ऐसा उनके युवावस्था के चित्रों से ज्ञात होता है।

रहन सहन :- वर्मा जी का रहन-सहन सादगी से भरा होते हुए भी उनकी सुरुचि सम्पन्नता का द्योतन करता है। उनकी `चित्रलेखा` इस बात का प्रमाण है। बड़े मनोयोग से उन्होंने अपने आवास का निर्माण करवाया है। सुव्यवस्थित एवं सुसज्जित ड्राइंग रूम में पहुँचते ही उनकी कलाप्रियता का आभास मिल जाता है। इसके अतिरिक्त उनका स्टडी रूम, बाहर का लॉन इत्यादि देखकर ऐसा लगता है कि वर्मा जी को ढंग से रहने का काफी शौक है।

खाने- पीने और साथ ही खिलाने का भी वर्मा जी को अत्यधिक शौक है। इसका पता इसी बात से चल जाता है कि अच्छे- अच्छे स्वादिष्ट व्यंजन दूसरों से बनवाने के अतिरिक्त वह स्वयं भी अपनी पसंद की चीजें बनाते रहते हैं।[1] मित्रों, मिलने जुलने वालों तथा अतिथियो का सत्कार वह जिस प्रकार सुस्वादु भोजन, चाय एवं नाश्ते से करते हैं, उससे उनकी आतिथ्य-सत्कार की भावना का पता तो चलता ही है, साथ ही उनके रहन-सहन के स्तर का भी ज्ञान हो जाता है।

अभिरुचियाँ :- हिन्दी साहित्य का प्रख्यात एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार अपने व्यक्तिगत जीवन में बड़ा ही सुलझा हुआ व्यक्ति है। विपुल साहित्य-राशि का सृजन करने वाला साहित्यकार विभिन्न शौकों, रुचियों एवं मनोरंजन के लिए कैसे समय निकाल पाता है ?

1- धर्मयुग - 3 सितम्बर 1972 पृष्ठ 5।

आश्चर्य होता है । उनके विभिन्न शौकों की चर्चा करते हुए श्रीमती वर्मा कहती हैं - ' मनोरंजन और शौक की परिधि वर्मा जी के लिए बहुत बड़ी है । कितने ही थके हों, कितनी भी रात हो गयी हो, पांच मिनट के लिए हजरतगंज के चौराहे पर उतरकर डबलरोटी लाने में भी उनका मनोरंजन होता है और किसी समवयस्क साहित्यकार की चटरवारे ले-ले कर चर्चा करने में भी । उनके और कितने शौक हैं, पर उनके एक शौक के बारे में सिर्फ मैं ही जानती हूँ । उल्लेख उसका मैं अवश्य करूंगी, वर्मा जी क्षमा करें । उनका वह शौक है - अपने उपन्यास के अंश या पूरी की पूरी रचना पढ़कर सुनाना - और उसके सम्बंध में अधीरता से श्रोता की राय जानना । नये उगते साहित्यकारों में भी वैसा उतावलापन मैंने नहीं देखा ।'[1] उनकी अन्य अभिरुचियों की सूची भी काफी लम्बी-चौड़ी है -' बढ़िया खाने के शौकीन, उससे ज्यादा मित्रों को खिलाने के, पुराने कपड़े उलटवाकर तथा कॉलर बदलवाकर पहनने का शौक, दोस्तबाजी और गप्पबाजी का शौक, काफी हाउस जाने की मीनिया--- और ---आजकल एक शौक और पनप रहा है - नौकर को ले जाकर निशातगंज से खुद ही फल-सब्जी ले आना । और इन सबसे बड़ा शौक है योजनाएँ बनाने का, जो कभी कार्यान्वित ही नहीं होतीं । किसी ने ठीक ही इन्हें योजना सम्राट की उपाधि दी है ।'[2]

योजना-सम्राट अथवा 'स्कीमों के बादशाह' की उपाधि से उन्हें विभूषित किया है प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री अमृतलाल नागर ने । वर्मा जी का 'कल्पना का धनी' मस्तिष्क प्राय: कोई न कोई नवीन योजना बनाया ही करता है । किसी भी बड़े से बड़े कार्य की रूपरेखा बनाने में उन्हें देर नहीं लगती । इस सम्बंध में नागर जी एक बड़ी ही मनोरंजक घटना का उल्लेख किया करते हैं । एक बार वर्मा जी ने अपने मित्रों के समक्ष एक साहित्यिक संस्था बनाने का प्रस्ताव रखा, किन्तु इस कार्य के लिए धन की आवश्यकता अनुभव की गयी - बेचारे साहित्यकारों के पास पैसा कहाँ से आए । धन एकत्र करने के लिए योजना वर्मा जी ने मिनटों में तैयार कर दी । उन्होंने कहा कि घसियारों की एक 'इन्श्योरेन्स कम्पनी' खोली जाय और घास बेचने वालों की सुरक्षा के कमीशन के रूप में घसियारों से कुछ प्रतिशत घास

1- धर्मयुग - 3 सितम्बर 1972 पृष्ठ 5।

2- देखिए - धर्मयुग 3 सितम्बर 1972 पृष्ठ 5।

ली जाए और उस घास से जो पैसा एकत्र हो उससे ही साहित्यिक संस्था का खर्च चलाया जाए। यह एक मजाक भरी घटना है, किन्तु ऐसी ही अनेक योजनाएँ उनके मित्रों के पास स्मृति के रूप में पड़ी हैं जिनका निर्माण वर्मा जी के मज़ाकिये स्वभाव ने किया है और जिनके निर्माण का वर्मा जी को बेहद शौक है। यदि इस हास्य-विनोद की तह में जाएँ तो वर्मा जी की अपूर्व संयोजन -शक्ति का परिचय मिलता है।

वर्मा जी एक कुशल संयोजक हैं और किसी भी कार्य को प्रारम्भ करते हुए उनके मन में उसकी रूप रेखा पूर्णतया स्पष्ट रहती है, किन्तु इस सम्बंध में नागर जी कहते हैं कि -"स्कीमों के बादशाह होने के बावजूद मैंने उन्हें योजना बनाकर कुछ लिखते हुए कभी नहीं पाया। वे अपनी अन्त: प्रवृत्तियों से ही परिचालित होते हैं, कहा करते हैं, "म्यां! हमने तो यही देखा कि चीज़ अपने आप चली आती है, उसके लिए विचार करना बेवकूफी है।"[1] वर्मा जी भले ही यह कहते हों कि वे योजना बनाकर नहीं लिखते और नागर जी भी उनके इस मत की पुष्टि करते हों किन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वर्मा जी का मस्तिष्क एक उत्तम कलाकृति के सृजन के लिए अपनी अवचेतनावस्था में सम्पूर्ण कथा की रूपरेखा निर्मित कर लेता है, तदुपरान्त वह उसे संकल्प के साथ प्रस्तुत करते हैं। परिणामस्वरूप हम देख सकते हैं कि वर्मा जी के उपन्यासों में कथा-संगठन का तत्व इतना प्रभावशाली एवं सुनियोजित रहता है कि उनके बड़े से बड़े उपन्यास में शिथिलता के अवसर प्राय: कम आते हैं। इसकी चर्चा सम्बंधित अध्याय में की जायगी।

वर्मा जी की इस योजकता का परिचय उनके द्वारा आयोजित एवं संयोजित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समारोहों में प्राप्त होता है। इसीलिए लखनऊ या वहाँ के आसपास के स्थानों में सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आयोजनों में वर्मा जी की उपस्थिति प्राय: अनिवार्य मानी जाती है। वर्मा जी को ऐसे समारोहों की समुचित योजना बनाने में विशिष्ट रुचि भी है। इस सम्बंध में दो-तीन प्रसंगों का विशिष्ट रूप से उल्लेख किया जा सकता है। सन् 1923 ई० में कानपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, उसकी व्यवस्था का भार उन्होंने अपने किशोर कन्धों पर सहर्ष रख लिया और उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली। उसी अधिवेशन के अन्तर्गत अपने मित्रों के साथ मिलकर एक सफल

1- भगवतीचरण वर्मा - लेखक- अमृतलाल नागर - पृष्ठ 7

कवि- सम्मेलन का आयोजन भी किया ।[1] अपनी इसी संयोजन क्षमता एवं साहित्यिक अभिरुचि के कारण वह मात्र 32 वर्ष की अवस्था में सन् 1935 ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य-मंत्री भी निर्वाचित किये गये । ऐसे ही अनेक समारोहों एवं आयोजनों में उनके संयोजन एवं निर्देशन की आवश्यकता लोगों के द्वारा अनुभव की जाती रही है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्मा जी की बहुमुखी व्यक्तित्व में उनकी संयोजन शक्ति का, उनकी योजना बनाने की रुचि का उल्लेखनीय योगदान रहा है ।

नवोदित साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने में भी वर्मा जी की विशेष रुचि रहती है । उनकी धर्मपत्नी कहती हैं -' उभरते हुए साहित्यकारों को प्रोत्साहन देना इनकी हॉबी है । उनकी प्रगति के लिए वे क्या कुछ नहीं करते । जगह- जगह दौड़धूप करेंगे । लोगों से मुलाकात कराते फिरेंगे । कभी- कभी पैसों से भी उनकी सहायता कर देंगे ।'[2] उनकी यह रुचि उनकी अतिशय उदारता एवं सदाशयता की परिचायक है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि वर्मा जी की अभिरुचियों में ताश खेलने का भी विशेष स्थान है, क्योंकि श्रीमती वर्मा कहती हैं - ' मूड में आकर ये ताश भी खूब खेलते हैं । सन् 1948 से 52 तक तो ये नियमित रूप से 'अवध जिमखाना क्लब ' ताश खेलने जाते थे और रात को एक-एक बजे लौटते थे । 1952 में आकाशवाणी की नौकरी के सिलसिले में हमें दिल्ली जाना पड़ा और जब लौटकर हम फिर लखनऊ आये, तब तक वर्मा जी क्लब जाने वाली अपनी इस कमजोरी पर विजय पा चुके थे । किंतु ताश अब भी इनकी कमजोरी है । अब भी जब मूड चढ़ता है, तो घंटों अकेले बैठे-बैठे ताश का 'पेशेंस गेम ' खेलते रहते हैं । तब न खाने-पीने की सुध रहती है और न लिखने की । किसी के कहने से ये नहीं मानते । किंतु जब खुद ही इन्हें एहसास होता है कि इसके कारण उनका लिखना नहीं हो पा रहा है, तो ताशों में आग लगा देते हैं । लाख कहो कि 'लाइए, छिपा कर रख दें ।' किन्तु अपनी कमजोरी से डरते हैं कि यदि ताश घर में रहें, तो कहीं निकलवा कर फिर न खेलने लगें ।'[3]

1- पूर्ववर्ती विवेचन में इस घटना का उल्लेख किया जा चुका है ।

2- धर्मयुग - 3 सितम्बर 1972 पृष्ठ 5।

3- देखिए - 'धर्मयुग '- 3 सितम्बर १९७२, पृष्ठ '५१ ~~26 जनवरी 1975, पृष्ठ 20-21 से उद्धृत~~ ।

पहले कहा जा चुका है कि वर्मा जी को `काफी हाउस जाने की मीनिया` है, अधिकांशत: संध्या के समय, किसी भी मौसम में, उन्हें लखनऊ के सुप्रसिद्ध बाज़ार हज़रतगंज के काफी हाउस में देखा जा सकता है। इसी प्रकार उन्हें चहलकदमी का भी अत्यधिक शौक है। `नगर (लखनऊ) में हजरतगंज, अमीनाबाद या चौक में अथवा कहीं भी अकेले या किसी के साथ पैदल चक्कर लगाते हुए आप इन्हें देख सकते हैं।`[1] इतना ही नहीं घूमने का उनका शौक इस हद तक पहुँचा हुआ है कि `झुलसा देनेवाले लू के थपेड़ों में भी `आज गर्मी और लू बहुत कम है` कहकर हजरतगंज की सड़कों की धूल फाँकते और शीतलहर से कुड़कुड़ाती रात में सड़कों को आबाद`[2] करते हुए उन्हें देखा जा सकता है।

उपर्युक्त सारे विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्मा जी का जीवन बहुरंगी अभिरुचियों से आवेष्टित है। जीवन की तमाम कठिनाइयों को उन्होंने अपनी विभिन्न एवं गतिविधियों में डुबो दिया है। अपने विभिन्न शौकों की व्यस्तता के कारण ही उनके संघर्ष पीछे छूट जाते हैं और `मस्ती का आलम साथ` हो लेता है।

<u>दिनचर्या</u> :- वर्मा जी की दिनचर्या की सामान्य बातों का उल्लेख करना तो यहाँ अनावश्यक होगा, किन्तु एक साहित्यकार होने के नाते उनकी लेखन सम्बंधी दिनचर्या की चर्चा करना अत्यंत आवश्यक है। यह पूछने पर कि `वह प्राय: किस समय लिखना पसंद करते हैं?` उन्होंने बताया कि अपने प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन में वे प्राय: रात में ही लिखा करते थे, किन्तु 1957 के बाद से नौकरी का बंधन न रहने के कारण अब प्राय: सबेरे ही लिखना-पढ़ना पसंद करते हैं। इस बात की पुष्टि उनकी कुछ पंक्तियों से भी हो जाती है -`सुबह के वक्त हम अपने बरामदे में बैठकर नाश्ता करते हैं, और नाश्ता करने के बाद कुछ लिखते पढ़ते हैं।`[3]

लिखने के स्थान के विषय में श्रीमती वर्मा बताती हैं -` अब सुबह के वक्त लिखते हैं और वह भी बरामदे में। बड़ी हसरत से इन्होंने अपना स्टडी-रूम बनवाया था, किन्तु उसमें बैठकर इनका लिखने का मूड ही नहीं बनता। सो हर मौसम में बरामदे में बैठकर ही लिखते हैं।`[4] लिखने-पढ़ने के कार्य के लिए उन्होंने स्टडी-रूम को छोड़कर बरामदा क्यों स्वीकार कर

1- `साप्ताहिक हिन्दुस्तान` - 26 जनवरी 1975, पृ० 20-21 से उद्धृत।

2- धर्मयुग - 3 सितम्बर 1972, पृ० 50 से उद्धृत।

3- देखिए - बाबाबाज़ी- लेखक- भगवतीचरण वर्मा, धर्मयुग 14 जुलाई 1968, पृ० 10

4- ,, धर्मयुग, 3 सितम्बर, 1972, पृ० 51

कर लिया है ? इस सम्बंध में वर्मा जी कहते हैं - " इसका सीधा - सादा जवाब यह है कि हमारा मकान एक ऐसे मुहल्ले में है, जहाँ जाने से लोग घबराते हैं, और मकान के सामने लान है, लान के बाद चहारदीवारी है, उसके बाद सड़क है । तो हमें तो कोई तब तक नहीं देख सकता जब तक कि वह हमें जबर्दस्ती देखने की कोशिश न करे और हम हैं कि जब तबीयत चाही तब सब-कुछ देख लिया, यानी मोटर, रिक्शे, ट्रकें, पैदल चलनेवाले - और जब तबीयत चाही व तब अपने काम में व्यस्त हो गये ।"[1]

प्रात: कालीन लेखक के अतिरिक्त सांध्यकालीन घूमना-फिरना उनकी नित्य दिनचर्या का विशेष अंग है । शाम के समय काफी हाउस, जाना, शहर के प्रमुख बाजारों में घूमना या मित्रों के साथ गप्पबाजी करना उनके लिए अत्यन्त आवश्यक है । सायंकाल की इस मौज को अभिव्यक्ति देने के लिए कभी-कभी वर्मा जी रात्रि के शयन के पूर्व भी कुछ लिख ब लेते हैं अन्यथा कुछ हल्का-फुल्का अध्ययन करने के पश्चात् सो जाना ही उन्हें रुचिकर प्रतीत होता है ।

अन्त: पक्ष :- व्यक्तित्व के अन्त: पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति के विशिष्ट स्वभाव, मनोवृत्तियों, एवं दुर्बलताओं को समाहित किया जा सकता है । मनुष्य के कुछ विशिष्ट गुण एवं अवगुण उसे समाज की भीड़ से एक पृथक 'व्यक्ति' के रूप में प्रतिस्थापित कर देते हैं अत: वर्मा जी के व्यक्तित्व को पूर्णतया समझने के लिए उनके स्वभाव की कुछ विशिष्टताओं का अवलोकन करना अनिवार्य है ।

व्यक्ति के स्वभाव में वंशानुक्रम एवं वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान एव होता है । वर्मा जी के स्वभाव को भी इन दोनों तत्वों ने प्रभावित किया है और इसीलिए उनमें कुछ परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है । एक ओर वह जहाँ अत्यन्त संवेदनशील, भावप्रवण एवं भावुक व्यक्ति हैं वहीं उनमें बौद्धिकता, तर्कशीलता एवं चिन्तनशीलता भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है । वस्तुत: वर्मा जी में भावना और बुद्धि दोनों का अतिरेक विद्यमान है । उनके इन विरोधी गुणों से युक्त व्यक्तित्व के निर्माण में उनके पारिवारिक संस्कारों एवं अपने जीवन के निजी अनुभवों का विशेष योगदान रहा है ।

वर्मा जी का परिवार संयुक्त प्रणाली का परिवार था, उसमें विभिन्न रुचियों, विश्वासों एवं स्वभाव के व्यक्ति थे । इन लोगों का थोड़ा बहुत प्रभाव वर्मा जी पर भी पड़ा

1- देखिए - धर्मयुग, 14 जुलाई 1968, पृ० 10

और उनमें अपने पारिवारिक व्यक्तियों के कुछ गुण आ गये । उनकी बाल्यावस्था में घर का वातावरण आस्तिकता एवं धार्मिकता से युक्त था । पूजापाठ, भजन-कीर्तन एवं मानमनौती में परिवार के लोगों का पर्याप्त विश्वास था- इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है । वर्मा जी पर भी अपने परिवार की आस्तिकता का प्रभाव पड़ा है । उन्हें वाह्याडम्बर से दूर रहकर ईश्वर के प्रति सच्ची आस्था है । ईश्वर में अपार श्रद्धा होने पर भी पूजा-पाठ करने के लिए उनका मन बहुत कम आकर्षित होता है । इस सम्बंध में उनकी धर्मपत्नी कहती हैं - 'हमारे वंश में एक ही पूजा-अनुष्ठान नियमित रूप से किया जाता है । वह है नवरात्रि में देवी की पूजा । और वह भी वर्मा जी इतनी जल्दी और हड़बड़ी में करते हैं कि देखकर हँसी आती है । बस देवी की ज्योति जलाकर और मन-ही-मन न जाने क्या मंत्र पढ़कर जल्दी-जल्दी हवनकर देते हैं । कभी कहेंगे, 'आज से मैं पूजा-पाठ करूँगा ।' बड़े संकल्प से पूजा-पाठ शुरू करते हैं, किंतु वह अधिक दिन नहीं चल पाता और यह कह कर उससे छुटकारा पा लेते हैं कि 'मैं तो केवल अपने विश्वासों की, अपनी आस्था की पूजा करता हूँ ।'[1] यह सच है कि वर्मा जी के कुछ निजी विश्वास हैं, कुछ निजी आस्थाएं हैं और उन्हीं को वर्मा जी का हृदय स्वीकार करता है । उन्होंने कहा है -'आस्था के दो रूप हैं - अन्धी आस्था और अच्छाई में आस्था - 'फेथ इन गुड' मेरी आस्था अन्धी नहीं है । मैं उस ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, जो हमें दुख देता है ईश्वर को 'गुड' का प्रतीक माना है । मेरी इसी ईश्वर पर आस्था है ।'[2]

वर्मा जी ईश्वर पर विश्वास करते हैं और नियतिवाद पर भी उनका अत्यधिक विश्वास है । नियतिवाद का प्रश्न कहीं- न-कहीं ईश्वर से अवश्य जुड़ा है और वर्मा जी यह मानते हैं कि नियतिवाद का चक्र मनुष्य को अच्छी- बुरी स्थितियों की ओर समान गति से खींचता रहता है ।[3] अत: वर्मा जी की 'फेथ इन गुड' वाली बात कुछ अंश तक समाप्त हो जाती है । वास्तविकता तो यह है कि वर्मा जी ईश्वर में विश्वास करते हैं अपनी भावुकता के क्षणों में, किन्तु जब उनकी बौद्धिकता उन पर हावी हो जाती है तब उनका मस्तिष्क ईश्वर, पूजा-पाठ और आस्तिकता के वाह्याडम्बरपूर्ण पक्ष का प्रतिकार करने लगता है ।

1- धर्मयुग - 3 सितम्बर 1972 पृष्ठ 5।

2- भगवतीचरण वर्मा - डा० कुसुम वार्ष्णेय- पृष्ठ-215

3- वर्मा जी की विचारधारा के अन्तर्गत इस सम्बंध में विस्तार से चर्चा की जायगी ।

अतिशय भावुकता एवं बौद्धिकता का जो समन्वित रूप वर्मा जी में देखने को मिलता है, वह प्राय: अन्यत्र नहीं मिलता । कुछ लोग अत्यधिक भावुक होते हैं तो कुछ अतिशय बुद्धिवादी किन्तु वर्मा जी में ये दोनों बातें अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई हैं ।

भावना के अतिरेक के कारण उनमें प्रगाढ़ संवेदनशीलता विद्यमान है। इसी संवेदनशील प्रकृति के कारण वे कवि बन सके । समाज के शोषित एवं दलित वर्ग के प्रति उनमें अगाध करुणा एवं सहानुभूति का भाव है, इसी कारण उनके काव्य में इस दलित वर्ग के लिए सह-पीड़ा देखने को मिलती है और शोषक के प्रति दुर्धर्ष आक्रोश एवं व्यंग्य । अपने जीवन एवं परिवार में भी उनकी भावुकता उमड़ती रहती है और वह कभी-कभी दुर्निवार आग्रह अथवा जिद में भी परिणत हो जाती है । इस प्रसंग में श्रीमती वर्मा का एक संस्मरण उल्लेख्य है - 'इनकी जिद की, हाल की एक घटना सुनाऊँ । मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती । चतुर्भुज का आग्रह भी था कि कुछ दिन कलकत्ता आकर रह जायें, तो वे कहने लगे, 'ऐसा करो तुम,धीरेन, कनक और बच्चे कलकत्ता चले जाओ । मैं यहाँ अकेला रह लूँगा ।' हम लोगों ने बहुत समझाया कि अकेले आपको तकलीफ होगी । नौकर कोई हमारे बराबर ख्याल थोड़े ही रख सकता है । पर ये नहीं माने और हँस कर कहने लगे ।'क्या है । खूब बढ़िया-बढ़िया खाना बनवा कर खाऊँगा और दोस्तों के साथ मौज करूँगा ।' उस समय तो हँस कर इन्होंने हमसे अपनी जिद मनवा ली और हमारा रिजर्वेशन करा दिया । लेकिन हमारे जाने के एक दिन पहले ही इन्होंने अखबार में पढ़ा कि गर्मी और लू के कारण ट्रेन में किसी बच्चे की मौत हो गयी । बस, फिर क्या था । अब तो यह जिद कि 'रिजर्वेशन कैंसिल कराओ । रास्ते में न जाने तुम लोगों को क्या-क्या तकलीफें हों ?'[1]

संवेदनशीलता के साथ-साथ वर्मा जी में सहृदयता, सदाशयता एवं परदु:खकातरता के गुण भी देखे जा सकते हैं । जहाँ वह मानव के त्रुटिपूर्ण व्यवहार के लिए उस पर व्यंग्य बाण छोड़ने से चूकते नहीं हैं, वहीं किसी दु:खी व्यक्ति को प्रसन्न करने में भी उन्हें अपार प्रसन्नता प्राप्त होती है । वे 'दूसरों को प्रसन्न करने के लिए --- अपने स्वाभाविक क्रम से अक्सर हट जाया करते'[2] हैं । प्राय: देखा जाता है कि लोग प्रशंसा प्राप्त करने के लिए दूसरों की सहायता करते हैं, मौखिक सहानुभूति प्रकट करते हैं ; किन्तु वर्मा जी दिखावे के लिए

1- धर्मयुग - 3 सितम्बर 1972 पृष्ठ-5।

2- कादम्बिनी - अप्रैल 1966 पृष्ठ 5।

मीठा भले ही न बोलें - मन से प्रत्येक दु:खी एवं कष्ट में पड़े व्यक्ति की यथासाध्य सहायता करने की इच्छा उन्हें बराबर बनी रहती है। स्वयं को दु:ख में डालकर भी वे दूसरों की सहायता करते रहे हैं। श्रीमती वर्मा कहती हैं - 'इनकी यह अतिशय उदारता कभी-कभी मुझे बहुत खल जाती ~~है~~ थी। जेब में जो कुछ पैसे होते, सब कुछ दे आते थे। घर के खर्च के लिए रखने का ध्यान ही नहीं रहता था। और इस मामले में झूठ भी बोलते रहे हैं मुझसे। देंगे दो सौ, तो बतायेंगे सौ ही आदमी अपने लिए दो पैसे बचाकर तब किसी को लुटाता है। इन-सा मैंने कोई नहीं देखा।'[1]

सहृदय एवं ~~से~~ संवेदनशील 'व्यक्ति' होने के साथ-साथ वर्मा जी मिल-जुलकर रहने में अधिक विश्वास रखते हैं। मात्र अपने 'स्वत्व' में केन्द्रित होकर रहना उन्हें कभी नहीं भाया। बाल्यावस्था में संयुक्त परिवार में रहने के कारण दस-पांच लोगों से घिरकर रहना उन्हें सदैव रुचिकर प्रतीत होता है। इतना ही नहीं, अपनी इसी सामाजिकता के कारण वह सायंकाल घर के घेरे में बँधकर नहीं रह पाते। मित्रों के समूह में घूमने-फिरने या गप्पबाजी करने का उन्हें बेहद शौक है। प्राय: देखा जाता है कि बुद्धिजीवी कुछ आत्मकेन्द्रित किस्म के हुआ करते हैं और विशेष रूप से प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचने पर गंभीरता का आवरण ओढ़ लेना स्वाभाविक बात है, किन्तु वर्मा जी इस कृत्रिम गंभीरता के पूर्णतया विरोधी हैं। बड़ा ही विनोदी एवं हँसमुख स्वभाव उन्होंने पाया है। अपनी इसी 'पुरमज़ाक तबीयत'[2] के कारण वर्मा जी मात्र सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था में ही कानपुर की साहित्यिक गोष्ठियों के महत्वपूर्ण सदस्य बन गये थे और आज भी गोष्ठियों, समारोहों इत्यादि में उनके स्तरीय विनोद एवं बुलंद ठहाके आनंद भर देते हैं।

वर्मा जी के उपर्युक्त गुण उनके व्यक्तित्व के कोमलांश का ही द्योतन करते हैं, इनके ~~अवर्ण~~ अतिरिक्त वर्मा जी में कुछ ऐसी प्रखरता एवं ओजस्विता भी विद्यमान है जो अधिकांशत: सामने वाले को निष्प्रभ कर देती है। इसका बहुत कुछ श्रेय उनकी अपराजेय बौद्धिकता, चिंतनशीलता एवं अपार कल्पनाशीलता को है। कठिन-से-कठिन प्रश्न का उत्तर उनका कल्पनाशील मस्तिष्क खोज ही लाता है और वह प्रश्नकर्त्ता को 'दो टूक' उत्तर देकर हतप्रभ कर देते हैं।

1- धर्मयुग - 3 सितम्बर 1972 पृष्ठ 51

2- भगवतीचरण वर्मा - ले० अमृतलाल नागर पृष्ठ 15

उन्होंने वकालत की विधिवत् शिक्षा ली है और संभवतः इसी कारण उनकी तर्कना-शक्ति अत्यधिक बढ़ी- चढ़ी है । अपने अकाट्य तर्कों द्वारा वह अपने विपक्षी का मुँह बन्द कर देते हैं, इससे कभी- कभी लोगों को उनके रूक्ष एवं तीखे होने का भी संदेह हो जाता है ; किन्तु वास्तविकता यह है कि वर्मा जी का स्वाभिमानी एवं निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व किसी से दबना-डरना तो जानता ही नहीं । वह स्वयं कहते हैं - ' मैं हमेशा से उद्धत-स्वभाव का रहा हूँ । ऐसा नहीं कि मैंने लोगों को आदर और मान नहीं दिया, लेकिन यह आदर और मान मैंने वय के अनुसार दिया है, पद के अनुसार नहीं दे पाया हूँ । जिससे मिला हूँ बराबरी के पद पर मिला हूँ, झुकना और दबना जैसे मैंने जाना ही नहीं ।'[1]

वर्मा जी के स्वाभिमानी एवं निर्भय स्वभाव के पीछे उनकी जीवनगत परिस्थितियों का विशेष हाथ रहा है । जीवन के पूर्वार्द्ध में आये संघर्षों एवं कठिनाइयों ने उनमें निराशा एवं कुंठा का सृजन नहीं किया अपितु उनमें ऐसा आत्मविश्वास एवं बल भर दिया कि वह बड़ी- से- बड़ी कठिनाई एवं बड़ी- से-बड़ी शक्ति का निर्भीकता ~~एवं०विद्वत्ता~~ से सामना करने का गुण स्वयं विकसित कर सके । इसी निर्भीकता एवं निडरता के कारण उनमें व्यंग्य करने की प्रवृत्ति भी आ गयी है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वह बड़े ही स्पष्टवादी एवं 'दो टूक' बात करने वाले व्यक्ति हैं, किन्तु कभी-कभी वर्मा जी अपने मर्म-प्रहारी व्यंग्यों से लोगों को ऐसा मुँहतोड़ उत्तर देते हैं कि सुननेवाला बाहर से हँसते हुए भी अन्दर तक तिल-मिला उठता है । विशेषकर समाज के शोषक वर्ग के प्रति उनमें अपार ~~क्रोध०ह~~ आक्रोश है और वह कभी भी अवसर मिलने पर उन पर अपने व्यंग्य-वाण छोड़ने से चूकते नहीं हैं । वर्मा जी के कथा-साहित्य में व्यंग्य की यह प्रवृत्ति बराबर परिलक्षित होती है ।

गुणों के साथ-साथ व्यक्ति में अवगुणों अथवा दुर्बलताओं का होना अनिवार्य है । संसार का कोई भी व्यक्ति सर्वगुण-सम्पन्न नहीं होता ; अथवा यह कहा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होता जिसमें कोई-न-कोई दुर्गुण या दुर्बलता न हो किन्तु व्यवहार-कुशल व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को यथासाध्य छिपाये रखते हैं । बहुत अंतरंग मित्र या परिवार-जन ही उन दुर्बलताओं से भिज्ञ हो पाते हैं । यहाँ हम स्वयं वर्मा जी द्वारा उल्लि-खित उनकी दुर्बलताओं की ओर इंगित करना चाहेंगे । वर्मा जी ने लिखा है -' तुम में

1- धर्मयुग - 25 अगस्त 1963, पृष्ठ 17

(वर्मा जी में) एक तरह की उच्छृंखलता है, एक अजीब-सी उद्दण्डता है और इनके साथ-साथ तुम में असंयम भी है ।`[1] किन्तु ये कमियाँ उनमें जन्मजात नहीं है, वरन् जीवन की विषम परिस्थितियों के कारण ही उनमें ये दुर्बलताएँ प्रादुर्भूत हुई हैं - ` तुम्हें ये अवगुण अति लाड़-प्यार से नहीं मिले । तुम्हें तो ये अवगुण भयानक संघर्षों से प्राप्त हुए हैं ।`[2]

वर्मा जी में काम करने की प्रबल इच्छा -शक्ति, निष्ठा एवं लगन है वह जिस कार्य को करने का दृढ़ संकल्प कर लेते हैं, उसे पूरा ही करके छोड़ते हैं, किन्तु उनका यही संकल्प, यही दृढ़ता कभी-कभी जिद का रूप धारण कर लेती है । इस सम्बंध में वर्मा जी ने लिखा है - ` जिसे तुम अपनी दृढ़ता अथवा अपना संकल्प समझते रहे हो, जहाँ तक मैं समझता हूँ, वह तुम्हारी जिद भर है । यानी अगर मैं कहूँ कि तुम किसी हद तक जिद्दी आदमी हो, तो यह कहना गलत न होगा ।`[3] वर्मा जी की जिद्दी प्रकृति का उल्लेख तो श्रीमती वर्मा ने भी किया है जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं । इस प्रसंग में उनका एक संस्मरण और उल्लेख्य है -`क्या मजाल कि येजिद में आ जायें, तो कोई इनसे इनकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात करवा ले ।--- एक दिन गर्मी की तपिश देखकर हमने इनकी इच्छा के विरुद्ध टेबुल फैन लगा दिया । फिर क्या था - उसे उठवाकर ही इन्होंने दम लिया ।`[4] वर्मा जी की यही जिद जब कभी ~~एवचप~~ रचनात्मक दिशा में मुड़ जाती है तो वह उनकी अपार शक्ति का रूप धारण कर लेती है । जब वह कोई काम करने की जिद ठान लेते हैं तो अत्यंत दुष्कर कार्य भी उनके लिए सुकर हो जाता है । श्री अमृतलाल नागर के अनुसार वर्मा जी का `एक दिन` कविता-संग्रह इस तथ्य का प्रमाण है ।[5] एक बार वर्मा जी को कुछ पैसों की आवश्यकता थी । उस समय लखनऊ की एकमात्र हिन्दी प्रकाशन संस्था ` गंगा पुस्तक माला ` से लेखकों को रचना देते ही तुरन्त पैसे मिल जाया करते थे । वर्मा जी ने बाजार से एक नोटबुक खरीदी और एक दिन के ही अन्दर एक कविता-संग्रह तैयार कर डाला । एक दिन में तैयार करने के कारण ही उसका नामकरण `एक दिन ` किया । वर्मा जी ने कविता-संग्रह गंगा पुस्तक माला के व्यवस्थापक को जाकर दे दिया और पैसों के साथ अपनी जेब गरम करके घर वापस आ गये ।

1- कादम्बिनी-अप्रैल 1966, पृ० 49
2- ,, ,, पृ० 50
3- ,, ,, पृ० 51
4- धर्मयुग - 3 सितम्बर 1972 पृ० 51
5- भगवतीचरण वर्मा- ले० अमृतलाल नागर पृ० 8

वर्मा जी के व्यक्तित्व की अन्तर्वर्ती प्रवृत्तियों के परिशीलन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्मा जी एक आस्तिक, आस्थावान्, भावुक एवं संवेदनशील व्यक्ति हैं किन्तु उनकी आस्था एवं भावना ने उनकी बौद्धिकता एवं चिंतनशीलता के पैर में कभी बेड़ी नहीं डाली। उनकी व्यापक बौद्धिकता एवं चिरन्तन चिन्तनशीलता उनकी निजी विचार-धारा एवं जीवन-दर्शन के निर्माण में सहायक हुई है। वर्मा जी में सहृदयता, सदाशयता एवं परदुःख कातरता के गुण पर्याप्त मात्रा में हैं किन्तु अपनी सहृदयता एवं सरलता के कारण वे कभी ठगे नहीं गये। उनमें ऐसी प्रखरता एवं कुशलता है कि कोई भी बड़ा-से-बड़ा व्यक्ति उन पर अपना प्रभुत्व जमाने में सफल नहीं हो सकता। इन गुणों के साथ उनमें जिद्दी होने की दुर्बलता भी है, जो कभी-कभी उनके लिए वरदान बन जाती है।

वर्मा जी के व्यक्तित्व के अन्तर्बाह्य स्वरूप का समग्र विश्लेषण करने के उपरान्त उनका बहुत-कुछ स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष उभरकर आ जाता है, किन्तु एक साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्यिक स्वरूप को देखे बिना पूर्ण नहीं हो सकता, अतः अगले पृष्ठों में वर्मा जी के साहित्यिक व्यक्तित्व पर विचार करना हम समीचीन समझते हैं।

साहित्यिक व्यक्तित्व :- जिस प्रकार किसी व्यक्ति के विभिन्न गुणों की समष्टि से उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है, उसी प्रकार किसी साहित्यकार का समग्रतया जो प्रभाव उसके पाठकों पर पड़ता है- उसी से साहित्यकार के साहित्यिक व्यक्तित्व का गठन होता है। कोई साहित्यकार साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाकर अपने पाठक का चित्त आकर्षित करता है और कभी ऐसा भी होता है कि एक साहित्यकार कई विधाओं में लिखता तो है, किन्तु पाठक उसके पक्ष-विशेष से ही प्रभावित होते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि एक साहित्यकार अपने साहित्य-लेखन के जिन-जिन रूपों के द्वारा ख्याति अर्जित करता है, उन सबके योग से उक्त साहित्यकार के साहित्यिक व्यक्तित्व का सर्जन होता है।

श्री भगवतीचरण वर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं, साहित्य की लगभग सभी विधाओं में उन्होंने समान शक्ति एवं अधिकार के साथ लिखा है, अतः यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के अन्तर्गत कई रूप सम्मिलित हैं; जिनके प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं - कवि, तार्किक, हास्य-व्यंग्यकार, निबंध लेखक, नाटककार, एकांकीकार एवं कथाकार। इसके अतिरिक्त साहित्य-गोष्ठियों एवं विविध साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों में वे सदैव रुचि लेते रहे हैं - इस बात की चर्चा पहले की जा चुकी है।

इन सभी व्यक्तित्व-पक्षों पर यहाँ क्रमशः विचार किया जा रहा है।

<u>वर्मा जी : कवि रूप में</u> :- वर्मा जी एक संवेदनशील व्यक्ति हैं। यह संवेदनशीलता उनके निजी जीवन के प्रति थी और साथ ही दूसरों के प्रति भी। इस संवेदनशीलता में उनके जीवनगत संघर्षों एवं पारिवारिक करुण घटनाओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। धीरे-धीरे उनकी यह संवेदनशीलता व्यक्तिगत सीमाओं का उल्लंघन कर व्यापक बन गयी और उनकी साहित्यिक कृतियों में अभिव्यक्ति पाने लगी। विशेषकर उनकी कविताओं में यह संवेदनशीलता विभिन्न स्तरों एवं रूपों में मुखरित हुई है। वर्मा जी की कविताओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उनकी कविता का अनेक समसामयिक प्रवृत्तियों एवं वादों से सम्बंध रहा है। इनके सम्बंध में कवि का निजी आग्रह रहा हो या न रहा हो, किन्तु आलोचकों ने ऐसा ही माना है। वर्मा जी समयान्तर से देश व समाज की विभिन्न समस्याओं और आवश्यकताओं तथा अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक विषयों पर कविताएँ लिखते रहे। कभी देश की दयनीय स्थिति ने उन्हें प्रेरित किया तो कभी समाज के शोषण ने उनके भावुक हृदय को इतनी ठेस पहुँचायी कि उनकी वाणी से कटु व्यंग्य और शोषित समाज की करुण अवस्था से उत्पन्न विषाद घुलकर फूट पड़े। इस संदर्भ में उनकी अत्यंत प्रसिद्ध कविता भैंसागाड़ी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ, नारियाँ जन रही हैं गुलाम ;
पैदा होना, फिर मर जाना, यह है लोगों का एक काम।

\+ + + +

थे क्षुधा-ग्रस्त बिलबिला रहे मानो वे मोरी के कीड़े
वे निपट घिनौने महापतित बौने, कुरूप टेढ़े मेढ़े।

\+ + + +

वह राज-काज जो सधा हुआ है इन भूखे कंकालों पर,
इन साम्राज्यों की नींव पड़ी है तिल-तिल मिटने वालों पर ;

\+ + + +

तुमने देखी हैं मान भरी उच्छृंखल सुन्दरियाँ अनेक।
तुम भरे पुरे, तुम हृष्ट पुष्ट, ए तुम समर्थ कर्ता -हर्ता।

\+ + + +

तुमने देखा है क्या ? बोलो, हिलता-डुलता कंकाल एक ?

यही कंकाल 'चूँ-चरर-मरर,चूँ-चरर-मरर' करती भैंसागाड़ी पर बैठ अपने कर्ज के भार को ढोए चला आ रहा है । इसी प्रकार उनकी अनेक प्रगतिशील विचारों से युक्त कविताओं में समाज में निरंतर फलते-फूलते शोषणकर्त्ताओं पर तीव्र व्यंग्य किया गया है - उनकी कटु आलोचना की गयी है ।

इसके ठीक विपरीत उनकी कुछ कविताओं में प्रेमी का विह्वल हृदय बिखर पड़ा है । निम्नलिखित पंक्तियों में एक प्रेमी की दुर्दमनीय कामना व्यक्त हुई है -

शाश्वत असीम में चलना है, निज सीमा के पार प्रिये
उस ओर जहाँ उन्मत्त प्रणय, है लोक लाज को छोड़ चुका
उस ओर जहाँ स्वच्छंद समय सुध-बुध के बंधन तोड़ चुका ।

लेकिन कवि यह भी जानता है कि यह प्रेममय संसार एक भुलावा है, प्रेम एक सुनहरा सपना है जिसका परिणाम विनाश है -

जीवन का अभिशाप लिए हूँ, पाप लिए हूँ यौवन का
और पहन रखी है मैंने, असफलता की जयमाला ।

किन्तु चिन्तन की विशिष्ट दिशा में बढ़कर उस पर मस्ती का एक पागलपन छा जाता है क्योंकि वह समझ जाता है कि यह संसार परिवर्तनशील है, हर्ष-विषाद,सफलता-असफलता, सुख-दुख इसके स्वाभाविक क्रम में आते-जाते रहते हैं ; इसलिए इस कालचक्र के प्रवाह में मस्ती से बहते चलना ही अभिप्रेत है -

हम दीवानों की क्या हस्ती, हैं आज यहाँ कल वहाँ चले ?
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहाँ चले ;
छक कर सुख-दुख के घूँटों को, हम एक भाव से पिए चले ।
हम भिखमंगों की दुनिया में, स्वच्छंद लुटाकर प्यार चले ;
हम एक निशानी-सी उर पर, ले असफलता का भार चले ;
हम हँसते- हँसते आज यहाँ, प्राणों की बाजी हार चले ।

वर्मा जी की काव्य-रचनाएँ जहाँ अपनी सुकुमार और कोमल कल्पना के कारण सहृदय पाठक के हृदय के तारों को झंकृत कर देती हैं तो वहीं हमें वास्तविक कठोर यथार्थ भूमि पर भी ला पटक देती हैं, लेकिन उनमें सर्वत्र एक भावुक हृदय की संवेदना व्याप्त दिखलायी पड़ती है जो उन्हें कवि की उच्च भूमिका पर आसीन कर देती है ।

वर्मा जी ने अपना साहित्यिक जीवन काव्य-रचना से ही प्रारम्भ किया था और उन्हें उस क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति भी मिली, किन्तु अन्तर्बाह्य विविध प्रेरणाओं से उन्होंने कालान्तर में कविता को छोड़ कथा -लेखन को पूर्णतया अपना लिया परन्तु उनकी संवेदनशील कवि की मूल प्रकृति उनसे अलग न हो सकी । उनके कथा-साहित्य में उनका कवि-रूप प्रायः झलकता दिखायी देता है । 'चित्रलेखा', 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'वह फिर नहीं आई' उपन्यासों में तो विशेषरूप से गद्य के प्रवाह के समांतर कवि की भावुकता गतिशील रही है । चित्रलेखा के सौन्दर्य-चित्रण में उपन्यासकार के कवि-रूप को स्पष्टतः देखा जा सकता है -

'उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति था और उसकी लहराती हुई वेणी नाग की भाँति थी, जो विष से त्रस्त होकर ~~चन्द्रमा~~ चन्द्रमा से उसका अमृत छीनने को उससे लिपट गया हो । उसकी वेणी में गुँथे हुए मुक्ता-जाल इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो चन्द्रमा को संकट में देखकर तारकावलि पंक्ति में बँधकर काले नाग से भिड़ गयी थी ।'[1]

'वह फिर नहीं आई' में रानी श्यामला की निष्प्रभ मनःस्थिति को काव्यात्मकता से व्यक्त किया है -

'क्या आप कल्पना कर सकते हैं - जिसे पाला मार गया हो, उस रक्त की जो ठंडा पड़ गया हो, उस अस्तित्व की जो भावना-विहीन हो गया हो ? क्या आपने पानी को सड़ते देखा है ? क्या आपने रुकी हुई हवा की घुटन का अनुभव किया है ?'[2]

इस प्रकार वर्मा जी के व्यक्तित्व का भावुक पक्ष उनके साहित्य में सदैव कवि बनकर विद्यमान रहता है चाहे वह साहित्य की कोई भी विधा क्यों न हो ।

<u>वर्मा जी : तार्किक रूप में :-</u> वर्मा जी में पैतृक उत्तराधिकार के रूप में बौद्धिकता के तत्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं - इसकी ओर पहले इंगित किया जा चुका है । संभवतः इसी बौद्धिकता के कारण न उनका मन किसी बात को सहज ही स्वीकार कर पाता है और न ही तर्क-वितर्क के अभाव में किसी नवीन तथ्य की स्थापना कर पाता है । उनकी यह प्रवृत्ति उनके कथा-साहित्य में ~~बरबस दृष्टिगोचर~~ होती है । वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र प्रायः सुशिक्षित, सुसंस्कृत एवं बुद्धिजीवी होते हैं, इसलिए उनकी प्रत्येक 'सैटिंग' में किसी न किसी दार्शनिक, नैतिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्या या प्रश्न को उठा लिया जाता है और

1- चित्रलेखा - पृष्ठ 37

2- वह फिर नहीं आई - पृष्ठ 86

फिर विभिन्न पात्रों के द्वारा उसके पक्ष-विपक्ष को प्रस्तुत किया जाता है। इन वाद-विवादों का सृजन वर्मा जी का चिन्तनशील एवं तर्कशील मस्तिष्क करता है। तर्क-वितर्क के विभिन्न पक्षों को उभारने के लिए वर्मा जी विभिन्न विचारों एवं मतों के व्यक्तियों को एक स्थान पर उपस्थित कर देते हैं, इसके पश्चात् उनके वार्तालाप के द्वारा चर्चित प्रश्न की अनसुलझी गाँठें खुलती चली जाती हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रारम्भ से ही उनका तार्किक रूप विद्यमान रहा है, विशेष तया 'चित्रलेखा' के लेखन-काल से तो उनकी तर्कना-शक्ति उत्तरोत्तर विकसित होती गयी है। 'चित्रलेखा' में विदुष पात्रों के तर्क-वितर्क के अनेक अवसर आते हैं, उनकी ललित-ललाम भाषा पाठक के मन को मुग्ध कर लेती है, किन्तु उसमें चिन्तन की वह प्रौढ़ता नहीं दृष्टिगत होती जो वर्मा जी के परवर्ती उपन्यासों में है। कालान्तर में चिन्तन की गहराई के कारण तर्कों में अधिक सशक्तता आती गयी है। वर्मा जी के उपन्यासों से कुछ उद्धरण देकर हम उनके तार्किक स्वरूप को स्पष्ट करना चाहेंगे।

'चित्रलेखा' में बीजगुप्त और चित्रलेखा कुमारगिरि की कुटी में आश्रय लेते हैं। विदुषी चित्रलेखा और योगी कुमारगिरि का साक्षात्कार तर्कपूर्ण वाद-विवाद में परिणत हो जाता है। कुमारगिरि चित्रलेखा की अभ्यर्थना का उत्तर देता है -

'--------- भगवान् तुम्हें सुमति प्रदान करें।'

'योगी! सुमति के अर्थ में भेद होता है, अनुराग का सुख विराग का दुःख है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सिद्धान्तों को निर्धारित करता है तथा उन पर विश्वास भी करता है। प्रत्येक मनुष्य अपने को ठीक मार्ग पर समझता है और उसके मतानुसार दूसरे सिद्धान्त पर विश्वास करनेवाला व्यक्ति गलत मार्ग पर है।'

'पर सत्य एक है, वास्तविकता का ज्ञान! मार्ग वही ठीक है, जिससे शान्ति तथा सुख मिल सके।'

'शान्ति और सुख! शान्ति अकर्मण्यता का दूसरा नाम है; और रहा सुख, उसकी परिभाषा एक नहीं।'[1]

1- चित्रलेखा, पृष्ठ 29-30

इसी प्रकार दोनों का वाद-विवाद काफी लम्बा खिंचता चला गया है और सम्पूर्ण प्रसंग पठनीय है । चित्रलेखा और कुमारगिरि दोनों एक दूसरे से प्रभावित तो होते हैं, किन्तु तर्क में पराजित होना किसी को मान्य नहीं । इस सम्पूर्ण वार्तालाप के माध्यम से वर्मा जी की वाक् पटुता एवं तर्क-क्षमता का दर्शन किया जा सकता है । इस वार्तालाप के मध्य उपन्यासकार की टिप्पणियाँ अत्यधिक भावपूर्ण एवं कवित्वमयी हैं । चित्रलेखा में ऐसे अनेक स्थल देखे जा सकते हैं ।[1] 'रेखा' उपन्यास का भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'मैं जानता हूं कि शरीर की कमजोरियों पर विजय पाना कठिन है लेकिन असम्भव नहीं है ।'

'जानती हूँ, डाक्टर । शरीर की कमजोरियों पर विजय पाई जा सकती है, अपनी आत्मा को दबाकर, उसे कुण्ठित करके । हमारे धर्मशास्त्रों में यही व्यवस्था की गई है -व्रत, उपवास,तपस्या । अपनी आत्मा को कुण्ठित करके शरीर की कमजोरियों पर विजय पाना- कितना भोंडा विधान है ।'

'रेखा जी । शरीर की हरेक कमज़ोरी आत्मा की कमजोरी है, क्योंकि कर्ता आत्मा है, शरीर तो आत्मा को साधन के रूप में मिला है । शरीर का हरेक कर्म आत्मा का कर्म है, शरीर की हरेक कमजोरी आत्मा की कमजोरी है ।'

'तो फिर आपके अनुसार शारीरिक और आत्मिक विकास में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए ?'

'मैं आपकी बात समझा नहीं ।'

'बड़ी सीधी-सी बात मैंने आपसे पूछी । आदमी कसरत करके, अच्छा खाकर अपने को सुडौल बनाता है । सैण्डो, राममूर्ति- ये जितने नाम आते हैं, इन सबने अपना शारीरिक विकास किया । और आत्मिक विकास योगियों ने किया, तपस्या करके, अध्ययन करके, मनन-चिन्तन करके । गांधी योगी थे, उनका क्षेत्र था आत्मिक विकास, गामा पहलवान था, उसका क्षेत्र था शारीरिक विकास । मैं गलत तो नहीं कहती, डाक्टर ?'

------'डाक्टर, शरीर बूढ़ा हो जाता है, लेकिन आत्मा तो नहीं बूढ़ी होती । शरीर जन्म लेता है, मरता है, लेकिन आत्मा अमर है, अजन्मा है । यही तो हमारा हिन्दू-दर्शन कहता है । ऐसी हालत में मैं तो इस निर्णय पर पहुंचती हूँ कि शरीर और आत्मा का

1- देखिए - चित्रलेखा, पृष्ठ-34 से 37, 65 से 67, 118 से 121 आदि ।

अन्तर आधारभूत अन्तर है । शरीर के अपने निजी गुण हैं, शरीर की अपनी निजी कमजोरियाँ हैं । इन कमजोरियों को दूर किया जा सकता है शरीर के विशिष्ट अंगों को नष्ट करके । डाक्टर, मैं पूछती हूँ कि शरीर को विकृत बना लेना कहाँ तक उचित है ?'

' रेखा जी, शरीर और आत्मा को पृथक् तत्व हैं, मैं मानता हूँ, लेकिन जैसा मैंने आपसे आरम्भ में ही कहा, बिना शरीर के आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है - कम-से-कम इस भौतिक जगत में । आत्मा का हरेक कर्म, हरेक भोग शरीर द्वारा होता है, आपको इतना तो स्वीकार करना पड़ेगा । लेकिन यह मान लेना कि आत्मा निर्विकार है, गलत होगा । आत्मा के पास गुणों के साथ-साथ विकृतियाँ मौजूद हैं । ज्ञान और अज्ञान, मानवता और पशुता- ये सब आत्मा के ही ~~कर्म~~ धर्म हैं ।'[1] जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र प्राय: सुशिक्षित हैं, उनके अपने व्यक्तिगत विश्वास और मान्यताएँ हैं । उनकी उच्च शिक्षा-दीक्षा का प्रमुख कारण उनका उच्चवर्गीय होना है । आभिजात कुलों से सम्बद्ध होने के कारण उनमें प्रबल आत्मविश्वास का होना स्वाभाविक है, इसीलिए ये पात्र निजी विचारों को बिना किसी संकोच या झिझक के कह देते हैं । इस संदर्भ में 'सामर्थ्य और सीमा' कृति का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है । इस उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र अपने-अपने क्षेत्र के ख्यातनाम व्यक्ति हैं और उनकी अहम्मन्यता चरम सीमा पर पहुँची हुई है । इसलिए उनकी प्रत्येक बातचीत वाद-विवाद की ओर ही मुड़ जाती है और वे बड़ी निर्भीकता एवं सतर्कता से अपनी बात का मंडन एवं विपक्षी की बात का खण्डन करते दीखते हैं। इस सम्पूर्ण उपन्यास में वर्मा जी की तार्किकता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचकर व्यक्त हुई है । इस उपन्यास के विविध पात्रों के वार्तालाप के द्वारा अपने देश व समाज की विभिन्न समस्याओं के अनेक पक्ष उभरकर आ जाते हैं ।

वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र अपनी बौद्धिक गुणवत्ता एवं निजी विचारधारा के अनुकूल अपने तर्क प्रस्तुत करते हैं । इन तर्कों की विशेषता यह होती है कि वे प्राय: अकाट्य एवं युक्तिसंगत होते हैं । इन तर्कों में वर्मा जी की प्रखर मेधा की झलक स्पष्ट रूप से मिलती है ।

वर्मा जी : हास्य- व्यंग्यकार के रूप में :- वर्मा जी के व्यक्तित्व के अन्त: पक्ष की चर्चा करते हुए हम लक्ष्य कर चुके हैं कि वर्मा जी अपनी विनोदी प्रकृति के लिए अपने मित्रों के बीच

1- 'रेखा' - पृष्ठ 264 से 266

अत्यंत प्रसिद्ध हैं। अपनी मित्र-मंडली में वे हास्य की फुलझड़ियाँ छोड़ा ही करते हैं और जब अवसर आता है तो वे तीक्ष्ण व्यंग्य-प्रहार करने से भी नहीं चूकते हैं। उनके साहित्य में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगत की जा सकती है। उनके उपन्यासों में यत्र-तत्र ऐसे पात्रों की सर्जना की गयी है जो अपने हँसी के ठहाकों से पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन तो करते ही हैं, साथ ही समाज में व्याप्त शोषक तत्वों पर निर्मम व्यंग्य वाण भी छोड़ते हैं। वर्मा जी के 'अपने खिलौने' तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' तो सम्पूर्णतः हास्य-व्यंग्य प्रधान उपन्यास हैं। इसी प्रकार उनकी 'दो बाँके', 'प्रायश्चित', 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी', 'विक्टोरिया क्रास', 'तिजारत का नया तरीका', 'इन्स्टालमेण्ट', 'अनशन', 'कुँवर साहब मर गये' और 'लाला तिकड़मीलाल' आदि कहानियों तथा 'सबसे बड़ा आदमी' और 'दो कलाकार' जैसे एकांकियों में वर्मा जी की हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति का सुन्दर निदर्शन हुआ है।

अपने कथा-साहित्य में हास्य की सृष्टि करने के लिए वर्मा जी विभिन्न उपायों को प्रयोग में लाते हैं। कभी तो वे पात्रों का नामकरण ऐसा करते हैं जिन्हें पढ़कर ही हँसी आ जाती है। तिकड़मीलाल, नामकमावनसिंह, कवि फटीश, जल्मी, फंफावत कुछ ऐसे ही नाम हैं। कभी-कभी वर्मा जी पात्रों का स्वरूप-वर्णन इस प्रकार करते हैं कि उस पात्र का ऐसा चित्र पाठक के मनस्-पटल पर अंकित हो जाता है जो उस पात्र के प्रत्येक क्रिया-कलाप पर हँसने को बाध्य कर देता है। इसके अतिरिक्त वर्मा जी ऐसी घटनाओं का समावेश भी करते हैं, जो पाठक के मन में हास्य की तरंगें तरंगायित कर देती हैं। ऐसी रचनाओं में वर्मा जी की वर्णन-शैली विशेष उल्लेखनीय है। उदाहरणस्वरूप यहाँ लाला 'तिकड़मीलाल' शीर्षक कहानी का कुछ अंश देखिए -

'लाला तिकड़मीलाल करीब तीस वर्ष के गोल-मटोल जवान थे। लाला तिकड़मीलाल के मित्र उनकी उपमा फुटबाल से देते हैं और उनके शत्रु ---- उन्हें भैंसासुर का अवतार मानते हैं। मालूम होता है कि जिस समय ब्रह्मा लाला तिकड़मीलाल को गढ़ने की सोच रहे थे, उनको सामने आबनूस का एक मोटा-सा कुन्दा मिल गया था। उनका मारकीन का कुरता अपने सैकड़ों मुखों द्वारा उनसे गिड़गिड़ाकर प्रार्थना कर रहा था -'मालिक, अब तो हम पर दया करो और शान्तिपूर्वक हमें मरने दो। अब हममें शक्ति नहीं है, जो हम तुम्हारी सेवा कर सकें। बारह गण्डे देकर सूद-दर-सूद सहित दस रुपए का काम हम से करवा चुके हो। अब हम समाप्त हो चुके हैं।'[1]

1- मेरी कहानियां- पृष्ठ 39

`प्रायश्चित` और `दो बाँके` कहानियों में क्रमशः प्रायश्चित की सारी तैयारी हो जाने पर बिल्ली का भाग जाना और लड़ाई की सारी तैयारी तथा मौखिक ललकारों के पश्चात् दोनों लखनवी बाँकों का एक दूसरे को सलाम करके, छाती फुलाकर अपने शागिर्दों से आ मिलना ऐसी घटनाएँ हैं जो कहानी के गम्भीर वातावरण को एकदम हास्य में परिणत कर देती हैं। `अनशन` शीर्षक कहानी में पाण्डेय जी जेल में अच्छा नाश्ता प्राप्त करने के लिए एक तरकीब खोज निकालते हैं। वे अनशन करने की घोषणा कर देते हैं। एक दिन भूखे रहने पर उन्हें `फोर्स फीडिंग` की जाती है और उसके बाद से जब पाण्डेय जी को दूध और खाने की आवश्यकता अनुभव होती है, तो वे जमीन पर लेटकर चिल्लाने लगते हैं कि वे दूध नहीं पियेंगे और जब उन्हें दूध जबरदस्ती से पिलाया जाता है तो वह आराम से दूध पी लेते हैं। ऐसी अनेक घटनाएँ वर्मा जी के कथा-साहित्य में विपुल मात्रा में मिलती हैं, जिनसे पाठकों का मनोरंजन तो होता ही है ; समाज और व्यक्ति की अनेक प्रवृत्तियों का उद्घाटन भी हो जाता है।

वर्मा जी की कुछ कहानियों में केवल समाज के प्रति कठोर व्यंग्य के ही दर्शन होते हैं। `काश कि मैं कह सकता`, `कुँवर साहब का कुत्ता`, `नाज़िर मुंशी`, `अर्थ-पिशाच` आदि कुछ ऐसी ही कहानियाँ हैं। `कुँवर साहब का कुत्ता` शीर्षक कहानी का एक उद्धरण देखिए - "अच्छा होता यदि भगवान ने मुझे कुँवर साहब का कुत्ता बनाकर पैदा किया होता। ऐसी हालत में मुझे तीन समय अच्छा-से-अच्छा खाना तो मिलता, गोश्त, दूध, बिस्कुट, सभी कुछ। और फिर एक नौकर, एक मकान और देखभाल करने के लिए एक डाक्टर भी मैं पाता। और सबसे बड़ी बात यह है कि मैं मौका-बे-मौका कुँवर साहब तथा कुँवरानी साहबा का मुँह चाट लेता।"[1] ध्यातव्य है कि सीधी सरल भाषा में समाज की विषम व्यवस्था पर कितना तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है।

वर्मा जी की बहुत-सी कहानियाँ हास्य-व्यंग्य प्रधान हैं, किन्तु अपने समाज के मीठे-कड़ुवे अनुभवों को कहानी के सीमित परिवेश में न समेट पाने के कारण वर्मा जी ने दो हास्य-व्यंग्य प्रधान उपन्यासों का सृजन भी कर डाला। `अपने खिलौने` में उच्च वर्ग में व्याप्त प्रदर्शन प्रियता एवं इस वर्ग के युवक-युवतियों की उच्छृंखलता पर उपन्यासकार ने इस रीति से व्यंग्य किया है कि घटनाएँ जहाँ एक ओर हास्य का सृजन करती हैं वहीं पात्रों के क्रिया-कलाप

1- मेरी कहानियां- पृष्ठ 195

एवं कथन स्वयं उन्हीं पर व्यंग्य बनकर छा जाते हैं। इसी प्रकार सबहिं नचावत राम गोसाईं में मंत्रियों एवं उद्योगपतियों की काली करतूतों को बड़ी ही कलात्मकता से उद्घाटित किया गया है। वर्मा जी के इन दोनों उपन्यासों की एक-एक घटना द्रष्टव्य है जहाँ आकस्मिक स्थितियों के संयोजन से वर्मा जी ने हास्य निष्पन्न किया है।

`अपने खिलौने` की नायिका मीना युवराज वीरेश्वरसिंह वीरेश्वरप्रताप सिंह की पार्टी में अपने रूप का प्रदर्शन करने के लिए सम्पूर्ण हरे रंग के श्रृंगार की व्यवस्था करती है, किन्तु उसके मंगेतर को मीना का वहाँ जाना पसंद नहीं अत: वह कोई ऐसी युक्ति खोजना चाहता है जिससे उस पार्टी में मीना उपेक्षित हो जाय। संयोग से मीना के हरे रंग के जूते को लेकर मीना के पिता के दक्षिण भारतीय मित्र कृष्णन् बहुत नाराज़ हो जाते हैं। इसी समय अशोक को विचार आता है कि वह कृष्णन् की आड़ लेकर जूता गायब कर सकता है और जूते के अभाव में मीना का समस्त हरित श्रृंगार फीका पड़ सकता है। वह जूता कृष्णन् के घर पहुँचा देता है किन्तु संयोग से मीना के पिता कृष्णन् को मनाने के उसके घर जाते हैं तो जूता मिल जाता है। अब अशोक की योजना असफल हो जाती है अत: वह मीना की सेंट की शीशी में काडलिवर आयल मिला देता है और सेंट के धोखे से उसे मीना पर छिड़क देता है। पार्टी में मीना के सुदर्शन श्रृंगार के बावजूद सब लोग मीना से दूर-दूर भागने लगते हैं। मीना इस काण्ड से इतनी विह्वल हो जाती है कि मानसिक रूप से असंतुलित हो उठती है।

इस पूरे प्रसंग से उच्चवर्गीय युवक-युवतियों की बचकानी एवं मूर्खतापूर्ण हरकतों का परिचय मिल जाता है। इसी प्रकार उपन्यास में ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जो हास्य की सृष्टि करती हैं।`सबहिं नचावत राम गोसाईं` में सर्वाधिक मनोरंजक घटना रामलोचन द्वारा चालबाज उद्योगपति राधेश्याम को गिरफ्तार कराने की है।

घटनाओं के अतिरिक्त वर्मा जी ने इन उपन्यासों में दिलवर किशन जख्मी और झंझावत जैसे पात्रों को भी स्थान दिया है जो उपन्यास के पृष्ठों पर प्रवेश करते ही पाठक के मन में हास्य- का उद्वेलन करने लगते हैं।

अधिकांशत: वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में विचित्र घटनाओं एवं स्थितियों के द्वारा ही हास्य-व्यंग्य की सृष्टि की है तथापि उनकी वर्णन शैली भी कम हास्यजनक नहीं है। अनेक स्थलों पर उनकी विनोदी प्रकृति मुखरित हुई है।`अपने खिलौने` में मीना के रूप का वर्णन करते हुए वर्मा जी ने `पेण्ट` की जो चर्चा की है वह अत्यंत हास्योत्पादक है -`चेहरे

पर स्वास्थ्य की एक लालिमा, जो चेहरे पर गुलाबीपन की झलक पैदा कर देती है। अक्सर लोगों को शक हो जाता है कि उस चेहरे पर लिपाई हुई है। जी, पेन्ट के लिए हिन्दी में लिपाई शब्द का ही प्रयोग हो सकता है; क्योंकि लेप लगाने की प्रथा हमारे प्राचीन काल में भी प्रचलित थी, लेकिन लोगों का ख्याल गलत है। चेहरे पर लिपाई-पुताई पढ़ी-लिखी लड़कियाँ नहीं करतीं- ऐसा एक पढ़ी-लिखी लड़की ने ही मुझे बतलाया है।'[1] इसी प्रकार भारतीय संस्कृति एवं अंग्रेजी संस्कृति में 'जूते' के स्थान की वर्मा जी ने बड़ी ही हास्य युक्त व्याख्या प्रस्तुत की है। कुछ अंश देखिए -

' सच तो यह है कि समझदार लोग नया जूता और साबुत जूता पहनकर महफिलों में और बश बरातों में जाते ही नहीं; क्योंकि वहाँ जूते चोरी हो जाने का खतरा है। कुछ लोगों का तो यह पेशा हो गया है कि नया जूता बाजार से खरीदने के स्थान पर इन महफिलों और बारातों में अपने पुराने जूतों को दूसरों के नए जूतों से बदल लें।'[2]

' अपने खिलौने ' में हास्य-पक्ष अधिक सबल है तो 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में व्यंग्य भरी मीठी चुटकियाँ पाठक का मनोरंजन करती रहती हैं। वर्मा जी के हास्य-व्यंग्यकार रूप की चरम सीमा तो तब परिलक्षित होती है जब पात्रों की गतिविधियां एवं कथोपकथन स्वयमेव हास्य-व्यंग्य का सृजन करने लगते हैं। इन दो उपन्यासों के अतिरिक्त वर्मा जी के अन्य सभी उपन्यासों में भी हास्य-व्यंग्य के स्थल देखे जा सकते हैं। हास्य का सर्वाधिक लक्ष्य तो उनके उपन्यासों के कवि-पात्र बने हैं। 'अपने खिलौने ' के जग्गी ','आखिरी-दाँव ' के किशोर, 'सीधी सच्ची बातें' के सैलाब तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाईं ' के झंझावत ऐसे कवि और शायर हैं, जो समय-असमय अपनी हास्यास्पद एवं बेतुकी कविताओं को फिट करते रहते हैं और अन्य लोगों के द्वारा दुत्कारे जाने पर भी अपमानित अनुभव नहीं करते। झंझावत की एक कविता के द्वारा वर्मा जी के हास्य-सर्जक रूप का दर्शन किया जा सकता है -

' चुप रहो ! चुप रहो !
मैं हूँ झंझावत !

1- अपने खिलौने- पृष्ठ 3

2- ,, पृष्ठ 75

और तुम सब वाहियात - तुम सब बदज़ात-तुम सब कुरुफ़ात ।
यह साला पूँजीपति- यह साली पुलिस -
सत्ता का दानव, रहा है हमें घिस
लेकिन मैं हूँ झंझावात- भयानक उत्पात -
जो मुझसे टकराएगा- चूर-चूर हो जाएगा -
मेरी एक हिस्स -
पूँजीपति फिस्स- पुलिस वाला फिस्स ।'[1]

अंततः हम कह सकते हैं कि वर्मा जी ने अपने कथा-साहित्य में कहीं घटनाओं द्वारा, कहीं पात्रों द्वारा, तो कहीं अपनी हास्ययुक्त वर्णन-शैली द्वारा हास्य-व्यंग्य का ऐसा उत्कृष्ट सृजन किया है कि पाठक का मनोरंजन भी होता है और समाज की विकृतियों का परोक्षरूप से उद्घाटन भी हो जाता है । उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य एकांकियों, तथा अनेक लेखों में उनका हास्य-व्यंग्यकार का स्वरूप झलकता दिखाई देता है ।

<u>वर्मा जी : निबंधकार के रूप में</u> :- भगवतीचरण वर्मा को इस रूप में प्रायः बहुत कम जाना जाता है, किन्तु उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का यह भी अनुपेक्षणीय पक्ष है । वर्मा जी को एक कुशल कथा-संगठनकर्ता होने के कारण विचारों को क्रमबद्ध रूप में लिपिबद्ध करने की अद्भुत क्षमता मिली है । सन् 1939 से सन् 1942 ई० तक कलकत्ता के साप्ताहिक पत्र 'विचार' का उन्होंने सम्पादन किया । उसके अन्तर्गत उनके सम्पादकीय लेख स्वयं में एक बड़ी उपलब्धि हैं - उन्हीं निबंधों को बाद में 'हमारी उलझन' नामक एक निबंध-पुस्तिका का स्वरूप प्रदान कर दिया गया । समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके सुन्दर लेख एवं निबंध प्रकाशित होते रहते हैं । उनकी सरस, पैनी एवं बेलाग लेखनी बड़ी कुशलता से विषय के मर्मस्थल को पकड़कर उसका रहस्य पाठक के समक्ष खोलकर रख देती है । वर्मा जी ने 'साहित्य का स्रोत', 'भावना, बुद्धि और कर्म' जैसे गंभीर चिंतनयुक्त निबंधों से लेकर 'बाबाबाजी', 'नेताबाजी' एवं साहित्यबाजी जैसे मनोरंजक एवं व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखकर अपनी बहुमुखी लेखन-प्रतिभा का परिचय दिया है ।

'भावना, बुद्धि और कर्म' निबंध के प्रारम्भ में वर्मा जी ने स्वीकार किया है - 'शास्त्रीय ज्ञान की पुस्तकें पढ़ने में मेरा मन नहीं लगता, देर तक सोचने-विचारने में मुझे एक

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं - पृष्ठ-169

उलझन -सी होने लगती है। अध्ययन एवं चिन्तन और मनन से मैं बहुत दूर रहा हूं।'[1] सत्य यही है कि गम्भीर सैद्धान्तिक विवेचन में वर्मा जी का मन बहुत नहीं रमता लेकिन जब भी उन्होंने ऐसे विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं, उनके स्वयं के अनुभव एवं उनके व्यावहारिक ज्ञान का ही स्वर अधिक मुखर रहा है। स्वानुभूत भावों को वर्मा जी प्रथमत: सूत्र-शैली में व्यक्त करते हैं, तत्पश्चात् उसे पाठक के मन में उतारने के लिए, उसे अच्छी तरह स्पष्ट करने के लिए, उस सूत्र का व्यास-शैली में विश्लेषण करते हैं।

भावना, बुद्धि और कर्म का अन्तर और पारस्परिक सम्बंध स्पष्ट करते हुए वर्मा जी लिखते हैं -' बुद्धि स्वयम् सक्रिय तत्व नहीं, वह भावना का पूरक तत्व है। कर्म करना भावना से प्रेरित है। उस कर्म को रूप देना बुद्धि का काम है। भावना पर बुद्धि का अनुशासन ही मानव विकास का नियम है।'[2]

इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए वे आगे लिखते हैं - 'बुद्धि स्वयम् में निष्क्रिय है, पर वह कर्म से सम्बद्ध होने के कारण सक्रिय कहलाने लगती है। बुद्धि को भावना वहन करती है - भावना से पृथक् बुद्धि का कोई अस्तित्व नहीं है।'[3]

' चींटी दाना बटोरती है, कुत्ता अजनबी आदमी को देखकर भूँकता है, मकड़ी जाला बुनकर उसमें मक्खियों को फँसाती है। इस सब में इनकी भावनाएँ तो आधार रूप में कर्म की प्रेरणा देती हैं, लेकिन इनके कर्मों को रूप देती है इनकी अविकसित बुद्धि।'[4]

'यथार्थवाद और आदर्शवाद' की नवीनतम व्याख्या उनकी मौलिक प्रतिभा का उद्घाटन करती है -' आदर्शवाद सामाजिक सत्य है, यथार्थवाद वैयक्तिक सत्य है। व्यक्ति के विकास के साथ विश्वास और प्रतिबन्ध से युक्त समाज की मान्यताएँ बदलती रहती हैं और इसलिए इस सामाजिक सत्य का रूप लगातार बदलता रहता है। ---- आदर्शवाद समय और परिस्थिति से सामंजस्य नहीं स्थापित कर पाता, उसकी मान्यताएँ अपरिवर्तनशील और कठोर होती हैं। ----- साहित्य और कला का भाग होने के कारण आदर्शवाद और यथार्थवाद

1- साहित्य ~~और~~ की मान्यताएँ- पृ० 1

2,3,4- साहित्य की मान्यताएँ, पृ० 3

दोनों में ही कुरूपता को कोई स्थान नहीं, असद् और अकल्याण से दोनों ही परे हैं। वस्तुत: प्रत्येक यथार्थवाद में मानव की उदात्त भावना का समावेश होना चाहिए --- और प्रत्येक ब आदर्शवाद में सहनशीलता होनी चाहिए, शाश्वत सत्य और मान्यताओं पर ही उसकी स्थापना होनी चाहिए।'[1]

इसी प्रकार के अनेक ज्वलंत विषयों पर वर्मा जी का विश्लेषण उनकी प्रखर मेधा का परिचायक है, किन्तु कहीं-कहीं इन विश्लेषणों में उनका स्वर भटका-भटका-सा प्रतीत होता है। वे स्वयं उलझन में पड़े दिखलायी पड़ते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि विवेच्य विषय की भूमिका स्वयं लेखक के मन में स्पष्ट नहीं है। लेकिन वर्णनात्मक निबंधों में उनकी हास्य-व्यंग्य प्रधान शैली के कारण जहां सरसता, रोचकता और प्रवहमयता आ जाती है, वहीं पाठक और लेखक के मध्य सह-अनुभूति के सम्बंध भी स्थापित हो जाते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

वर्मा जी के बँगले पर कुछ 'बाबाजी' उन्हें अपनी कृपा से लाभान्वित करने पधारे, किन्तु उन्हें निराश होकर जाना पड़ा- ' हमने उनसे साफ-साफ कहा कि हमें भगवान का दर्शन करने की कोई आवश्यकता नहीं है, हिन्दुस्तान में सैकड़ों की तादाद में बाबाओं का रूप धारण किए हुए भगवान घूम रहे हैं, और हिन्दुस्तान की यह हालत कि अकाल, भुखमरी, गरीबी, लूट, शोषण और बेइमानी का जीता-जागता नरक बना हुआ है।'[2]

नेताओं के त्याग और उनकी संख्या के बारे में वर्मा जी कैसा मार्मिक व्यंग्यवाण छोड़ते हैं -' जेल जाना, पिटना, गोली खाना, फाँसी चढ़ना, मकान और जायदाद की कुर्की-यानी हर तरह की ~~मुसि~~ मुसीबत। इन मुसीबतों के बावजूद नेताओं की पौध बढ़ती ही जा रही है। और महात्मागाँधी ने जो अहिंसा और खादी का पाठ पढ़ाया तो उसने तो मजा ही दिखा दिया। गाँधी टोपी पहने हुए और खद्दर की वर्दी पहने हुए नेताओं की एक बहुत बड़ी फौज तैयार हो गई। देश के कोने-कोने में, इस भावना के पागलपन को लिए हुए।'[3]

1- साहित्य की मान्यताएँ, पृ० 55-56

2- धर्मयुग-14 जुलाई, 1968 पृष्ठ 10

3- ,, 20 अक्तूबर 1968 पृष्ठ 24

नेतागीरी की विशेषताएँ विशिष्ट रूप में उल्लेख्य है - नेतागीरी एक निहायत कलात्मक पेशा है, जिसमें उपदेश, गुंडागर्दी और धोखाधड़ी तीनों ही बड़ी खूबी के साथ शामिल कर लिए गये हैं ।[1]

इस प्रकार वर्मा जी के तीन प्रकार के निबंधों-यथा, सैद्धान्तिक निबंध, भावात्मक निबंध और वर्णनात्मक निबंध, में उनका निबंधकार का व्यक्तित्व सम्पूर्णत: प्रतिबिम्बित होता है जो उनके साहित्यकार को एक गरिमा प्रदान करता है ।

वर्मा जी : एकांकीकार और नाटककार के रूप में :- वर्मा जी की यह विशेषता रही है कि उन्होंने जिस विधा को भी छुआ है, उसमें एकाधिक ऐसी रचना का सृजन कर दिया है ; जो अपने में अन्यतम सिद्ध हुई है और उसमें हिन्दी साहित्य में विशेष ख्याति अर्जित की है । 'दो कलाकार' और 'सबसे बड़ा आदमी' भी ऐसे ही एकांकी हैं जो अपने पाठकों को तो आकर्षित करते ही हैं, हिन्दी-एकांकी संग्रहकर्ताओं ने प्राय: अपने संकलनों में इन एकांकियों को स्थान देकर इनके महत्व को प्रमाणित कर दिया है ।

वर्मा जी द्वारा लिखित एकांकियों में हास्य-व्यंग्य का ही स्वर अधिक मुखर रहा है इन एकांकियों में समाज की गंभीर समस्याओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि वह सामान्य पाठक के मनोरंजन की क्षमता तो रखते ही हैं, प्रबुद्ध पाठक हास्य के आवरण में छिपे उनके मर्म से भीग उठता है । वर्मा जी के एकांकियों की एक विशेषता यह भी है कि उन्हें अत्यंत सामान्य सामाजिक वातावरण में प्रस्तुत किया गया है, जिससे उनका रंगमंचीकरण अत्यंत सुगमता से हो सकता है ।

वर्मा जी के एकांकी-संग्रह 'बुझता दीपक' के अन्तर्गत चार एकांकी संग्रहीत हैं । प्रथम एकांकी 'दो कलाकार' में एक कवि और एक चित्रकार के जीवन की झाँकी है । विषम आर्थिक स्थितियों ने उन्हें इस बात पर विवश कर दिया है कि वे जैसे भी बन पड़े लोगों को मूर्ख बनाकर अपना जीवन-निर्वाह करें । प्रकाशक परमानंद, चूड़ामणि को ऐसे तो पैसे देता नहीं अत: चूड़ामणि उसे 'परमानंद पुराण' लिखने की धमकी देकर उसकी सोने की घड़ी ही ऐंठ लेता है । उधर चित्रकार मार्तण्ड , रामनाथ के पिता जी का तैलचित्र बनाता है, किन्तु पर्याप्त रुपया न पाने के कारण चित्र लेकर भाग आता है और चित्र में से नाक गायब कर देता है और नाक ठीक करने के पचास रुपये रामनाथ से झाड़ लेता है । ऐसे ही वे दोनों मकानमालि

1- धर्मयुग-20 अक्तूबर, 1968 पृष्ठ 24

को भी परेशान करके मकान में जमे रहते हैं। यह एकांकी हमारे समाज की आर्थिक अव्यवस्था पर हास्य-व्यंगय शैली में प्रहार करता है। लेखक ने बड़े ही रोचक संवादों एवं सरस घटनाओं के द्वारा अपना अभिप्रेत अभिव्यंजित किया है।

`सबसे बड़ा आदमी` में एक होटल का दृश्य है। तीन-चार मित्र संसार के सर्वाधिक महान व्यक्ति को लेकर बहस कर रहे हैं, इसी बीच एक अजनबी उनके वाद-विवाद में सम्मिलित हो जाता है और जब वह चला जाता है तो लोगों को पता चलता है कि उनका सामान व रुपया सब नदारद है। वे सब एक कंठ से उसे ही संसार का `सबसे बड़ा आदमी` स्वीकार कर लेते हैं। इन दोनों नाटकों को पढ़कर वर्मा जी की अनूठी कल्पना-शक्ति का परिचय प्राप्त हो जाता है। `चौपाल में` शीर्षक एकांकी में छुआछूत और अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को उभारा गया है और उस समस्या का समाधान लेखक ने इसी में पाया है कि हम सब अपनी परिस्थितियों से समझौता कर लें, इसी में हमारी भलाई है। केवल `बुझता दीपक` ही एक गंभीर शैली में रचित एकांकी है, जिसमें हमारे समाज की धोखाधड़ी, प्रदर्शनप्रियता, सूदखोरी, मुनाफाखोरी और इन सबके समक्ष सच्ची मानवता की पराजय की ओर इंगित किया गया है। राधेश्याम कांग्रेस-कमेटी के सभापति हैं, जो अत्यन्त निष्ठावान एवं ईमानदार व्यक्ति हैं। जीवन भर देश-सेवा में लगे रहकर भी उन्हें लोगों के आचरण से घोर निराशा होती है, यहाँ तक कि उनकी प्रेमिका भी उन्हें निरुत्साहित करती है। अंतत: वह अपने प्राण गँवा देते हैं, उनका जीवन-दीप बुझ जाता है।

वर्मा जी के जीवन-परिचय के अन्तर्गत हम लक्ष्य कर चुके हैं कि उनका प्रारम्भिक जीवन दुरुह आर्थिक-संघर्षों में व्यतीत हुआ। आर्थिक समस्याओं के बोध ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि उनकी प्राय: सभी रचनाओं में अर्थ-दानव के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है। उनका प्रसिद्ध नाटक `रुपया तुम्हें खा गया` आर्थिक समस्याओं को आधार बनाकर ही लिखा गया है। प्रस्तुत नाटक का मुख्य पात्र सेठ मानिकचन्द एक फर्म में लेखक का कार्य करते हुए सुखी जीवन व्यतीत कर रहा था, किन्तु वैभव-प्राप्ति की उत्कट लालसा उसे उस फर्म से दस हजार रुपये के गबन के लिए विवश कर देती है। उसे रुपया मिलता है, छल-छद्मयुक्त व्यापारिक कौशल दस हजार को करोड़ो में परिणत कर देता है, किन्तु उसका पारिवारिक जीवन अभिशप्त हो जाता है। पत्नी, बेटा बेटी सभी उससे धन प्राप्त करना चाहते हैं, किसी के हृदय में उसके लिए ममता नहीं रहती। वह स्वयं अंतिम अवस्था तक धन के मोह से मुक्त नहीं हो पाता।

अन्त में उक्त फर्म के कैशियर किशोरीलाल, जिसे पाँच हजार रुपये के गबन के

मिथ्यापराध में कारावास की यंत्रण भोगनी पड़ी थी, मानिकचन्द की आँखें खोलता है -

"तुम्हारे ऊपर मेरा अभिशाप नहीं, अभिशाप रुपये का है। ---- तुम्हारी सुख-शान्ति अर्थ के पिशाच ने तुमसे छीन ली, तुम्हारा सन्तोष उसने नष्ट कर दिया। उस दिन जब तुम दस हज़ार रुपया चुराकर लाए थे, तब तुमने समझा था कि तुम रुपया खा गए--- लेकिन तुमने बहुत गलत समझा था। --- मैं कहता हूँ कि तुमने रुपया नहीं खाया था, ~~रुपया~~ रुपया तुम्हें खा गया।"

इसी नाटक के द्वारा नाटककार वर्मा जी का अभिप्रेत यही है कि अर्थरूपी पिशाच मनुष्य की मानवता का भक्षक है, वह मनुष्य की समस्त कोमल भावनाओं को विनष्ट करके उसे एकदम निष्ठुर एवं भावहीन बना देता है।

वर्मा जी का नाटक एवं एकांकी-साहित्य अत्यल्प मात्रा में ही है, तथापि उसकी महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उनके रोचक एवं उद्देश्यपूर्ण एकांकियों एवं नाटकों के योग से उनके बहुमुखी साहित्यिक व्यक्तित्व की भव्यता में अभिवृद्धि हुई है।

<u>वर्मा जी : कथाकार के रूप में :-</u> वर्मा जी ने अपने साहित्यिक-जीवन का सूत्रपात कविता-लेखन से किया था, किन्तु श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के सम्पर्क से कथा-लेखन में उनकी अभिरुचि जागृत हुई।[1] उन्होंने कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया, उपन्यास भी लिखे और आज यह स्थिति है कि उनका कवि-रूप बहुत पीछे छूट गया है, कथाकार रूप ही प्रधानतया लोकप्रिय है। कहानी कहने, उसे संगठित रूप में प्रस्तुत करने की अपूर्व प्रतिभा वर्मा जी को मिली है, उनके उपन्यासों और कहानियों में अन्य तत्वों की अपेक्षा कथा-पक्ष अत्यधिक सबल रहा है और यही कारण है कि वर्माजी एक लोकप्रिय कथाकार के रूप में हिन्दी कथा-साहित्य की अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

वर्मा जी का प्रथम उपन्यास 'पतन' सन् 1928 में प्रकाशित हुआ किन्तु वह अधिक ख्याति नहीं प्राप्त कर सका। उनका द्वितीय उपन्यास 'चित्रलेखा' सन् 1934 में प्रकाशित हुआ और उसने हिन्दी उपन्यास जगत् में धूम मचा दी। 'चित्रलेखा' की महत्ता का ज्ञान हमें तब होता है जब हम देखते हैं कि वह उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की सर्वाधिक प्रौढ़ कृति

1- देखिए - भगवतीचरण वर्मा - डा० कुसुम वार्ष्णेय, पृष्ठ 12

'गोदान' से दो वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था । एक ओर एक मंजे कलाकार की अथक साधना और अनुभव था, दूसरी ओर एक नवोदित कथाकार की निष्ठा एवं उत्साह । इसी उत्साह ने ऐसी सशक्त कृति को जन्म दिया कि आज भी वह अद्वितीय बनी हुई है । तब से वर्मा जी के बारह उपन्यास तथा तीन कहानी-संग्रह 'इन्स्टालमेण्ट', 'दो बाँके' और 'राख और चिनगारी' (सन् 1971 में प्रकाशित 'मेरी कहानियाँ' कहानी-संग्रह में अधिकांशत: इन्हीं तीन संग्रहों की कहानियाँ हैं) प्रकाशित हो चुके हैं । उनकी कुछ कहानियाँ प्रसिद्ध कहानी-मासिक पत्रिका 'सारिका' में भी छपी हैं । वर्मा जी की इन सभी कृतियों ने उनकी कीर्ति को उत्तरोत्तर वर्द्धमान किया है । वर्मा जी की कथा-कृतियों के अध्ययन को ही इस शोधग्रंथ का लक्ष्य बनाया गया है ।

वर्मा जी के पूर्व समवेक्षित सभी रूपों के अतिरिक्त कुछ अन्य साहित्यिक रूप भी हैं, उन्होंने कुछ रिपोर्ताज, रेडियो रूपक एवं सिनारियो आदि भी लिखे हैं । इन सबसे वर्मा जी के के साहित्यिक व्यक्तित्व को अधिक शक्ति एवं सम्मान प्राप्त हुआ है ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि एक साहित्यकार की विशुद्ध एवं आग्रहहीन भूमिका पर प्रतिष्ठित होकर वर्मा जी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्राय: सभी विधाओं के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा और साधना का न्यूनाधिक परिमाण में योगदान किया है । उनकी प्रमुख रचनाओं की तालिका प्रस्तुत है -

(क) कविता :- मधुकण, मानव, प्रेमसंगीत, एकदिन, विस्मृति के फूल और रंगों से मोह ।

(ख) नाटक :- रुपया तुम्हें खा गया (1955)

(ग) एकांकी :- बुझता दीपक (एकांकी संग्रह) (1950)

(घ) निबंध :- हमारी उलझन, साहित्य की मान्यताएँ तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबंध ।

(ङ) उपन्यास :- पतन(1928), चित्रलेखा(1934), तीन वर्ष(1936), टेढ़े-मेढ़े-रास्ते(1948), आखिरी दाँव(1950), अपने खिलौने(1957), भूले बिसरे चित्र(1960), वह फिर नहीं आई (1960), सामर्थ्य और सीमा(1962), रेखा(1964), थके पाँव(1963), सीधी सच्ची बातें(1968), सबहिं नचावत राम गोसाईं(1970) तथा प्रश्न और मरीचिका (1973) ।

(च)कहानी :- दो बाँके(1935), इन्स्टालमेण्ट(1936), राख और चिनगारी(1950), मेरी कहानियाँ(1971), तथा मोर्चाबन्दी(शीघ्र प्रकाश्य)।

(छ) अन्य प्रकीर्ण विधाएँ :-

1- रेडियो रूपक-महाकाल,कर्ण और द्रौपदी,त्रिपथगा।

2- सिनारियो - वासवदत्ता का चित्रालेख।

3- सम्पादन -विचार(कलकत्ता) नवजीवन (लखनऊ)

साहित्यिक सम्मान :- वर्मा जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को हिन्दी साहित्य में पर्याप्त ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। समय-समय पर विभिन्न संस्थाओं ने उनके प्रति अपना सम्मान व्यक्त कर अपनी भावनाओं का उद्घाटन किया है।

सन् 1935 ई० में मात्र 32 वर्ष की अवस्था में वर्मा जी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य -मंत्री पद पर नियुक्त करके सम्मानित किया गया। तदनन्तर सन् 1940 ई० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के काशी अधिवेशन के अवसर पर वे तरुण-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष भी बनाए गये इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अभी कुछ दिन पूर्व ठाकुर देवीसिंह बिष्ट महाविद्यालय(नैनीताल) में उन्हें दीक्षांत भाषण के लिए आमंत्रित किया गया,[1] इससे ज्ञात होता है कि उच्चस्तरीय शिक्षा-क्षेत्र में वर्मा जी की साहित्यिक गरिमा को अत्यन्त सम्मानपूर्वक स्वीकार किया जाता है। वर्मा जी की साहित्यिक प्रतिष्ठा का क्षेत्र असीमित है, कुछ वर्ष पूर्व उनके हास्य व्यंग्यकार रूप को सम्मानित करने के लिए कलकत्ता के `ठलुआ क्लब` ने उन्हें ठलुआ शिरोमणि की उपाधि से विभूषित किया। इस प्रकार के अनेक साहित्यिक आयोजनों में उन्हें सम्मानित किया गया है।

वर्मा जी की साहित्यिक कृतियों को अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ है। उनके सुप्रसिद्ध उपन्यास `भूले बिसरे चित्र` को सन् 1962 ई० में साहित्य अकादमी पुरस्कार द्वारा पुरस्कृत किया गया। इस उपन्यास को कई अन्य पुरस्कार भी मिल चुके हैं।[2] इसके अतिरिक्त उनके `भूले बिसरे चित्र` और `सामर्थ्य और सीमा` आदि उपन्यासों को अपने पाठ्यक्रम में स्थान देकर अनेक विश्वविद्यालयों ने उनको सम्मान प्रदान किया है। इसी प्रकार विद्यालय

1- धर्मयुग - 10 अगस्त 1975 पृष्ठ 19 से ज्ञात।

2- भगवतीचरण वर्मा - डा० कुसुम वार्ष्णेय-पृष्ठ 14

से लेकर स्नातकोत्तर परीक्षाओं के लिए स्वीकृत संग्रहों में उनकी कहानियाँ और एकांकियों को स्थान दिया गया है ।

वर्मा जी की साहित्यिक गरिमा का सर्वोच्च सम्मान भारत सरकार के 'पद्मभूषण' अलंकरण द्वारा हुआ है । सन् 1971 में उन्हें इस उपाधि से विभूषित किया गया । जिन संस्थानों ने विभिन्न पुरस्कारों अथवा आयोजनों द्वारा वर्मा जी को सम्मानित किया, इससे वे स्वयं गौरवान्वित हुई हैं ।

वर्मा जी का सम्मान वस्तुत: उनकी साहित्यिक कृतियों का सम्मान है । उनकी कृतियों की महती सफलता का बहुत कुछ श्रेय उनकी मौलिक निष्पक्ष एवं स्वतंत्र विचारधारा को है । जीवन के अविरत संघर्षों एवं अनुभवों के बीच से उन्होंने निजी जीवन-दर्शन निर्मित किया है, जिसकी स्पष्ट प्रतिच्छाया उनके साहित्य में मिलती है । अपने उपन्यास एवं कहानियें के विभिन्न पात्रों के माध्यम से भी उन्होंने अपना दृष्टिकोण पाठकों तक पहुँचाया है । अत: वर्मा जी के जीवन-दर्शन एवं प्रमुख मान्यताओं का अवलोकन कर लेना भी समीचीन प्रतीत होता है ।

<u>वर्मा जी का जीवन-दर्शन एवं मान्यताएँ</u> :- श्री भगवतीचरण वर्मा के जीवन-दर्शन का नाम लेते ही जो बात सबसे पहले ध्यान में आती है, वह है नियतिवाद । वर्मा जी को नियतिवाद पर अटूट विश्वास है । आदि से अन्त तक उनके सभी उपन्यासों मेंनियतिवाद के प्रति उनकी आस्था स्पष्टतया झलकती है । एक समीक्षक ने तो यहाँ तक कह डाला है कि 'भगवतीबाबू भाग्यवादी हैं, बल्कि भाग्यवादियों में भाग्यवादी हैं । --- नियतिवादी होना भगवतीबाबू की नियति है । कौन जाने वही सही हो ?'[1] नियतिवाद के सम्बंध में वर्मा जी का दृष्टिकोण अत्यंत स्पष्ट एवं निर्भ्रांतिरूप से व्यक्त हुआ है - ' मनुष्य परतंत्र है, परिस्थितियों का दास है, लक्ष्य-हीन है । एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को चलाती है । मनुष्य की कोई इच्छा का कोई मूल्य ही नहीं है । मनुष्य स्वावलम्बी नहीं है, वह कर्ता भी नहीं है, साधन-मात्र है ।'[2] अपने इस विचार को वर्मा जी ने भिन्न-भिन्न शब्दावलियों में बार-बार दोहराया है। 'प्रश्न और मरीचिका' के जयराज उपाध्याय कहते हैं - ' कर्ता कोई और है, हम सब तो निमित्त मात्र हैं । -----' न मनुष्य अपनी इच्छा से जन्म लेता है, न अपनी इच्छा से मरता

1- धर्मयुग-16 अगस्त 1970 पृष्ठ 16

2- चित्रलेखा - पृष्ठ 144

है । ऊपर से कार्य और कारण एक-दूसरे से बुरी तौर से सम्बद्ध दिखते हैं, लेकिन इस कार्य और कारण की लम्बी श्रृंखला को देख पाना हमारे वश में नहीं है ।'[1] इतना ही नहीं, नियतिवाद के प्रति वर्मा जी की आस्था इतनी सघन है कि इसे आधार बनाकर उन्होंने एक सम्पूर्ण उपन्यास 'सामर्थ्य और सीमा' का सृजन कर डाला । नियति अथवा प्रकृति ही ऐसी सबल शक्ति है, जिसकी अनिच्छा के कारण विश्वविख्यात इंजीनियर, उद्योगपति, मंत्री एवं डिज़ाइनर की सारी योजनाएँ निष्फल हो जाती हैं और सुमनपुर का विकास नहीं हो पाता, वरन् ये सभी दिग्गज व्यक्ति काल-कवलित हो जाते हैं ।

प्रश्न यह उठता है कि क्या नियति को सर्वबली मानकर असहाय एवं निष्क्रिय बनकर बैठ जाना चाहिए । वर्माजी नियति अथवा परिस्थिति के भँवर में अकर्मण्य होकर घूमते जाने के सर्वथा विरोधी हैं । उन्होंने बीजगुप्त के कथन के माध्यम से अपने विचार स्पष्ट कर दिये हैं - 'मनुष्य की विजय वहीं सम्भव है, जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाय, वरन् अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे ।'[2] 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के रामनाथ भी परिस्थितियों से हारना स्वीकार नहीं करते - 'पराजय--- पराजय की भावना अपने अन्दर है, मनुष्य जब तक अपने अन्दर से पराजित न हो, पराजित नहीं । बाहरवाली परिस्थितियों से लड़कर हारना या जीतना मनुष्य के वश की बात नहीं, असीम शक्तियाँ उसके खिलाफ केन्द्रित हो सकती हैं । लेकिन अपने अन्दर से हारना या जीतना- यह मनुष्य स्वयम् कर सकता है ।'[3] वर्मा जी के यह विचार स्पष्टरूप से 'गीता' के कर्मवाद से प्रभावित दिखते हैं । गीता में मन से इन्द्रियों को वश में करके, अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों से कर्म करनेवाले को श्रेष्ठ कहा गया है -

'यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।7।। तृतीय अध्याय ।।

1- प्रश्न और मरीचिका-पृष्ठ 517 इस संदर्भ में वर्मा जी के उपन्यासों के अनेक स्थल देखे जा सकते हैं-'भूले बिसरे चित्र', पृ० 712, 'वह फिर नहीं आई'-पृ० 27, 'सामर्थ्य और सीमा'-पृ० 73, 276, 'रेखा'-पृ० 323,336, 'सीधी सच्ची बातें'-पृ० 223, 381,411,422,549,616,622 आदि, 'सबहिं नचावत राम गोसाईं'-पृ० 284 तथा 'प्रश्न और मरीचिका'- पृ० 522,545 आदि ।

2- चित्रलेखा - पृष्ठ-60

3- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 493

वर्मा जी ने स्वीकार भी किया है -'मैं गीता को भी तो नियतिवाद का प्रतिपादन ही मानता हूँ जहाँ कि निराशावाद से भरी अकर्मण्यता के स्थान पर आशावाद युक्त कर्म-मार्ग को नियतिवाद का रूप माना गया ।'[1]

कुछ लोगों का मत है कि नियतिवाद दु:खवाद, निराशा और निष्क्रियता को जन्म देता है, किन्तु वर्मा जी की दृष्टि से यह सत्य नहीं है । उनका विचार है कि -'मेरा नियतिवाद इस दु:खवाद से शासित नहीं है । --- मनुष्य में गुण सक्रिय हैं- वह दया,प्रेम, त्याग आदि गुणों से युक्त होकर ह ही सामाजिक प्राणी बन सका है और निरंतर विकास करता जाता है ।'[2]

वस्तुत: वर्मा जी की यह धारणा भ्रमयुक्त प्रतीत नहीं होती, मनुष्य की आत्मा में परमात्मा का निवास है - वह 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की भावना से युक्त है । मनुष्य कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता जो दूसरों के लिए अहितकर हो, किन्तु इन कल्याणकारी प्रवृत्तियों के प्रतिक्रियात्मक रूप से प्रभावित होकर वह दुष्कर्म कर बैठता है । व्यक्ति को अपनी स्वाभाविक वृत्तियों को दबाने का यत्न नहीं करना चाहिए । यदि वह ऐसा करता है, तो इसका अर्थ है कि वह ईश्वर प्रदत्त परिस्थितियों का सामना नहीं करना चाहता । जब वह परिस्थितियों से दूर भागता है, तभी वह अध:पतन के गर्त में गिरता चला जाता है । परिस्थितियों से दूर भागना, उनसे मुख मोड़ना वर्मा जी की दृष्टि से कायरता है, आत्मा का हनन है ।'चित्रलेखा' में काशी का सन्यासी कहता है -'जिस समय तुम विवाह न करके सन्यासी होने की बात सोचते हो, तुम कायरता करते हो । एक अबला को आश्रय देने का जो तुम्हारा कर्तव्य है, उससे तुम विमुख होते हो ।'[3] इसी उपन्यास में कुमारगिरि और बीजगुप्त की भूमिका से वर्मा जी ने इस विचारधारा को प्रमाणित किया है । कुमारगिरि निरी अवस्था युवावस्था में संसार से भागकर योगी बन जाता है, किन्तु जब चित्रलेखा उसके निकट पहुँचती है तो उसका समस्त संयम स्खलित हो जाता है और वह पतित हो जाता है, इसके विपरीत बीजगुप्तस संसार की सम-विषम परिस्थितियों में कर्तव्याकर्तव्य पर विचार करते हुए आगे बढ़ता है और अंत में चित्रलेखा को अपनाकर भी त्याग व व संयम की उच्च भूमिकापर प्रतिष्ठित दिखलायी देता है ।

1- त्रिपथगा - भगवतीचरण वर्मा, पृ० 70(भगवतीचरण वर्मा-कुसुम वार्ष्णेय, पृ० 12 से उद्धृत)

2- 'रंगों के मोह' की प्रस्तावना से (भगवतीचरण वर्मा- डा० कुसुम वार्ष्णेय, पृ० 12 से उद्धृत ।

3- चित्रलेखा, पृ० 147

जीवन के स्वस्थ उपभोग में ही वर्मा जी का विश्वास है। वह व्यक्ति-स्वातंत्र्य को सदैव महत्वपूर्ण मानते रहे हैं, किन्तु उनकी व्यक्तिवादी चेतना असामाजिक कदापि नहीं है। यदि मनुष्य की प्राकृतिक और स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ वासनाओं की तृप्ति चाहती हैं,तो उनको नियंत्रित करना अहितकर है ; क्योंकि इनके अस्वाभाविक नियंत्रण से असामाजिक तत्वों के उत्पन्न होने का भय रहता है। वर्मा जी के उक्त दृष्टिकोण की ओर लक्ष्य करके डा० नगेन्द्र ने लिखा है -" भगवती बाबू आस्तिक प्रवृतिवादी हैं। पीड़ा में उनका विश्वास नहीं। उनकी आस्था स्वस्थ उपभोग में है - अहं के निषेध में नहीं, अहं के परितोष में है।"[1] स्वस्थ भोगवाद को स्वीकार करते हुए भी वर्मा जी भौतिक उच्छृंखलताओं का सर्वथा विरोध करते हैं। व्यक्ति की सहज, प्राकृतिक और स्वाभाविक क्रियाओं को वह पर्याप्त महत्व देते हैं। मनुष्य में गुण के समानांतर अवगुण अथवा कमजोरियाँ भी स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती हैं, उन्हें बलपूर्वक दबाना व्यर्थ है। इसी तथ्य की ओर रेखा इंगित करती है -" शरीर की कमजोरियों पर विजय पायी जा सकती है, अपनी आत्मा को दबाकर,उसे कुण्ठित करके। हमारे धर्मशास्त्रों में यही व्यवस्था की गई है - व्रत, उपवास, तपस्या। अपनी आत्मा को कुण्ठित करके शरीर की कमजोरियों पर विजय पाना-कितना भौंडा विधान है।"[2] वर्मा जी मानते हैं कि इन कमजोरियों को, इन आधारभूत प्रवृत्तियों को दबाने की अपेक्षा उन्हें इस प्रकार संतुष्ट किया जाय कि वह दूसरों को कष्ट न पहुँचायें। 'चित्रलेखा' में महाप्रभु रत्नाम्बर श्वेतांक से कहते हैं -" अच्छी वस्तु वही है, जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो।"[3] अर्थात् वर्मा जी व्यक्ति की असामाजिक स्वतंत्रता का खण्डन करके अपनी व्यक्ति-स्वातंत्र्य की धारणा को सामाजिक व्यापकता प्रदान कर देते हैं।

जीवन की शाश्वत एवं अत्यंत जटिल समस्या 'पाप-पुण्य की समस्या' पर भी वर्मा जी ने अपना नितांत मौलिक दृष्टिकोण व्यक्त किया। पाप-पुण्य सम्बंधी वर्मा जी के विचार एकांतिक भले ही हों किन्तु अपनी युवावस्था में जिस निर्भीकता एवं दृढ़ता से अपने विचारों को प्रकट किया, वह श्लाघ्य है। 'चित्रलेखा' में महाप्रभु रत्नाम्बर का अपने

1- काव्यचिंतन - डा० नगेन्द्र, पृ० 35

2- रेखा - पृष्ठ 264-265

3- चित्रलेखा- पृष्ठ 14

शिष्यों के प्रति किया गया कथन वर्मा जी की मेधावी चिन्तना का परिचायक है। पाप को नियति एवं परिस्थिति से जोड़कर उन्होंने नवीनता उत्पन्न कर दी है -'संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशिष्ट प्रकार की मन: प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है --- प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मन:प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है --- यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है --- विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ?'

-----'संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी --- और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।'[1]

'तीन वर्ष' की प्रभा भी इन्हीं विचारों का समर्थन करती प्रतीत होती है -- 'भलाई और बुराई केवल तुलनात्मक है और वह व्यक्तिगत प्रश्न हैं। ---पाप और पुण्य भी मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। और हमारा कर्तव्य वह है, जिसे हमारा अन्त:करण स्वीकार करे।'[2] और जैसा कि हम पहले बता चुके हैं वर्मा जी की मान्यता है कि हमारी आत्मा, हमारा अंत:करण कभी गलत काम करने की प्रेरणा नहीं देता, वह सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की उदात्त भावना से ओतप्रोत रहता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि वर्मा जी भाग्यवादी हैं और जीवन को वह ईश्वर के निर्णय पर छोड़ देते हैं। फल की इच्छा किए बिना कार्य करते जाने में ही वह विश्वास करते हैं क्योंकि 'कर्म जीवन है और निष्क्रियता मृत्यु है - गति-हीनता मृत्यु की प्रतीक है।'[3] किन्तु मनुष्य को वही कर्म करना चाहिए जो सामाजिक हो, 'समाज के नियमों का पालन करना' उनकी दृष्टि में अत्यन्त आवश्यक है।

पाप-पुण्य जैसी ही अत्यंत विवादग्रस्त, किन्तु जीवन से अत्यधिक जुड़ी हुई समस्या प्रेम की है। प्रेम और वासना, प्रेम और विवाह आदि समस्याओं पर वर्मा जी का चिंतन

1- चित्रलेखा - पृ० 177

2- तीन वर्ष - पृ० 38-39

3- साहित्य की मान्यताएँ - पृ० 1

--अत्यधिक गहन है और उस पर उनके स्वतंत्र विचार भी हैं, ऐसा उनके विभिन्न उपन्यासों से ज्ञात होता है क्योंकि इस समस्या पर प्राय: वर्मा जी के औपन्यासिक पात्र वाद-विवाद करते दीख पड़ते हैं ; जिससे ज्ञात होता है कि वर्मा जी ने इस विषय के विभिन्न पक्षों पर बड़ी गहराई से विचार किया है। 'चित्रलेखा ' कहती है कि -"प्रेम परिवर्तनशील है। प्रकृति का नियम परिवर्तन है, प्रेम उसी प्रकृति का एक भाव है। प्रकृति का नियम प्रेम पर भी लागू हो सकता है।"[1] किन्तु , बीजगुप्त कहता है-" प्रेम का सम्बंध आत्मा से है, प्रकृति से नहीं। जिस वस्तु का प्रकृति से सम्बंध है, वह वासना है, क्योंकि वासना का सम्बंध वाह्य से है। वासना का लक्ष्य यह शरीर है, जिस पर प्रकृति ने कृपा करके उसको सुन्दर बनाया है। प्रेम आत्मा से होता है, शरीर से नहीं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, आत्मा का नहीं। आत्मा का सम्बन्ध अमर है।"[2]

इसके पश्चात् चित्रलेखा का उत्तर और भी अधिक तर्कपूर्ण है -"आत्मा का सम्बन्ध अमर है। बड़ी विचित्र बात कह रहे हो बीजगुप्त। जो जन्म लेता है वह मरता है, यदि कोई अमर है तो अजन्मा भी है। जहाँ सृष्टि है, वहाँ प्रलय भी रहेगा। आत्मा अजन्मा है इसलिए अमर है, पर प्रेम अजन्मा नहीं है। किसी व्यक्ति से प्रेम होता है, तो उस स्थान पर प्रेम जन्म लेता है। सम्बन्ध होना ही उस सम्बन्ध का जन्म लेना है। वह सम्बन्ध अनन्त नहीं है, कभी-न-कभी उस सम्बन्ध का अन्त होगा ही। प्रेम और वासना में भेद केवल इतना है कि वासना पागलपन है, जो क्षणिक है और इसीलिए वासना पागलपन के साथ ही दूर हो जाती है ; और प्रेम गम्भीर है।"[3]

चित्रलेखा और बीजगुप्त के दृष्टिकोण प्रेम-सम्बंधी अति यथार्थ एवं आदर्श पक्ष को प्रस्तुत करते हैं। इन दोनों को विस्तार से देने का कारण यही है कि संभवत: वर्मा जी इन दोनों अतिवादी विचारों की मीमांसा करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि " प्रेम आत्मिक और शारीरिक आकर्षण का दूसरा नाम है। जहाँ केवल आत्मिक आकर्षण होता है, वहाँ हम उसे मित्रता कहते हैं, साथ ही शारीरिक आकर्षण को वासना कहते हैं। इसी मित्रता

1- चित्रलेखा - पृ० 66

2- ,, पृ० 66

3- ,, पृ० 66

और वासना के सम्मिश्रण का नाम प्रेम है ।'[1] वर्मा जी के इसी दृष्टिकोण को रेखा के योगेन्द्रनाथ भी अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं -'प्रेम आत्मा और शरीर इन दोनों के समान भाव से एक दूसरे में लय की प्रक्रिया का नाम है ।'[2] और 'विवाह' के सम्बंध में वर्मा जी की मान्यता पूर्णतया स्पष्ट है । 'तीन वर्ष' के अजित के शब्दों में उनके विचार द्रष्टव्य हैं- 'स्त्री को आश्रय देना, उसकी रक्षा करना, यह पुरुष का कर्तव्य है ; इसलिए प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य समझा गया है कि वह एक स्त्री को आश्रय दे, साथ ही उस स्त्री को अपनाकर अपने को पूर्ण बनावे । सृष्टि में पुरुष अपूर्ण है, क्योंकि उसके ममत्व पर केन्द्रीभूत होने के कारण उसमें दया, त्याग, सहानुभूति आदि की कोमल भावनाओं का अभाव-सा है, और साथ ही स्त्री भी अपूर्ण है ; क्योंकि उसमें अधिकार, वीरता, साहस आदि का अभाव है ; इसलिए स्त्री और पुरुष के मिल जाने से ही जीवन पूर्ण होता है । फिर काम-वासना का भी प्रश्न स्त्री और पुरुष के साथ होने से हल हो जाता है, इसीलिए विवाह का जन्म हुआ है ।'[3] वर्मा जी की दृष्टि से विवाह का आधार प्रेम नहीं है, विवाह एक सामाजिक संस्था है जिसके द्वारा पुरुष स्त्री के भरण-पोषण तथा उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है ।

प्रत्येक प्रबुद्ध साहित्यकार का साहित्य और कला के सम्बंध में निजी दृष्टिकोण होता है । वर्मा जी के कला सम्बंधी विचार विशद चर्चा के विषय रहे हैं । उन्होंने यद्यपि 'कला कला के लिए' ही स्वीकार किया है, किन्तु वह इसके दूसरे पक्ष 'कला जीवन के लिए' को भी अस्वीकार नहीं करते । कहने का तात्पर्य यह है कि कला के सम्बंध में उनका कोई विशिष्ट आग्रह नहीं है । अपने समय के जाज्वल्यमान विषय पर अपने विचार प्रकट करने के लिए ही उन्होंने अपने साहित्य में समय-समय पर अपनी मान्यताओं को व्यक्त किया है । उनके मतानुसार-'कला पर्यायी अंग्रेजी का शब्द आर्ट है और आर्ट शब्द में कृत्रिम-रूप से सँवारने की भावना है --- कला हर स्थान पर कृत्रिमता के नियमों से बंधी है । ---यह कृत्रिमता के नियम ही मानव की चेतना के द्योतक हैं, क्योंकि इन नियमों में परित्याग करने का तथा चयन करने का विधान है । जो कुरुप है अथवा विकृत है उसका परित्याग आवश्यक है ।'[4] और इसीलिए 'भावना और बुद्धि का संतुलन कला की प्रथम आवश्यकता है ।'[5] क्योंकि

1- तीन वर्ष- पृ० 51
2- रेखा - पृ० 273
3- तीन वर्ष- पृ० 54
4- साहित्य की मान्यताएँ - पृ० 10
5- वही, पृ० 10

भावना को व्यक्त करने, उसे रूप देने का काम बुद्धि ही करती है। इस प्रकार वर्मा जी के अनुसार बुद्धि-भाव-समन्वित कला को जन्म देना ही कलाकार का प्रथम कर्तव्य है।

अब प्रश्न उठता है कि कला और कलाकार का उद्देश्य क्या होना चाहिए ? कला के सम्बंध में विभिन्न दृष्टिकोणों की भांति, कला के उद्देश्य के सम्बंध में भी विभिन्न विद्वानों के पृथक-पृथक मत हैं। वर्मा जी के अनुसार कला का प्रथम उद्देश्य 'भावना का व्यक्तीकरण'[1] है, द्वितीयत: उसे 'संवेदना की सृष्टि'[2] करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कलाकार को चाहिए कि 'वह अपने व्यक्तित्व में दुनिया के व्यक्तित्व को लय कर दें, न कि दुनिया की रुचि के अनुसार वह अपने व्यक्तित्व को रूप दें।'[3] उनके अनुसार तुलसीदास, कालिदास, शेक्सपियर और होमर आदि महान् कलाकारों से हम इसीलिए प्रभावित होते हैं कि हम उनकी भावना में स्वयं को खो देते हैं, इन कलाकारों की भावनाओं के अन्दर से भावनात्मक सरसता का आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। यद्यपि कला को व्यक्त करने का माध्यम बुद्धि ही है, किन्तु 'कला और साहित्य का सम्बंध अनुभूति से है इसलिए वह ज्ञान की सीमाओं से परे है।'[4] किसी कलाकृति का आनन्द लेते समय हम उसके बीच से किसी दर्शन या शास्त्रीय विवेचन को नहीं प्राप्त करना चाहते, उसके लिए बड़े-बड़े ग्रंथ पड़े हैं ; इसीलिए वर्मा जी मानते हैं कि 'सफल साहित्य वह है जिससे ज्ञान के स्थान पर आनन्द अथवा मनोरंजन की प्राप्ति हो।'[5] 'कला में मनोरंजन प्रधान है, इसे स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं।'[6] कला को वर्मा जी पूर्णरूपेण मनोरंजन-प्रधान मानते हैं, वरन् वह विनोद में यहाँ तक कह डालते हैं कि -' मेरा दृष्टिकोण केवल इतना है कि लोगों का मेरे लेखन से मनोरंजन हो और वे मेरी कृतियाँ को खरीदें, ताकि मुझे रायल्टी के पैसे मिलें।'[7]

कला के दो रूप स्वीकार किए जाते हैं - पहला -'स्वांत:सुखाय कला', दूसरा रूप है -'बहुजन हिताय कला'। वर्मा जी का अपेक्षाकृत अधिक झुकाव 'स्वांत:सुखाय कला' के

1- साहित्य की मान्यताएँ - पृ० 22
2- ,, पृ० 13
3- ,, पृ० 11
4- ,, पृ० 17
5- ,, पृ० 27
6- ,, पृ० 7
7- सारिका- 8 जनवरी 1963 पृ० 10

प्रति है। तथापि वह बहुजन अथवा समाज के महत्व को अवश्य स्वीकार करते हैं। उनका विचार है -" जो कला का निजी रूप है (कलाकार के पक्ष वाला) वह कलाकार का सत्य है --- जिस कला का कलाकार अपने में तन्मय होकर सृजन नहीं करता उसमें कलाकार प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सकता ; पर कलाकार के निजी पक्ष के साथ परोक्ष पक्ष अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, क्योंकि ---- जो कला बहुजन हिताय नहीं होती वह समाज में स्थान नहीं पा सकती।"[1] कला की सफलता, श्रेष्ठता और सार्थकता इसी बात में है कि वह लोकहित और समाज-कल्याण पर आधारित हो और ऐसा तभी हो सकता है जबकि कला व्यक्तिगत वासनाओं से मुक्त हो। साथ ही वर्मा जी यह भी कहते हैं कि -" कला की उत्कृष्टता, उसकी शक्ति और उसकी सफलता कला के स्वांत:सुखाय वाले पक्ष में निहित है क्योंकि कला का स्रोत तो कलाकार की प्रवृत्ति और अन्तर्प्रेरणा, अर्थात् कलाकार की चेतन प्राण-शक्ति में है, और कलाकार का उद्देश्य अपने निजी आनन्द का सृजन है।"[2]

यहां वर्मा जी के कला सम्बंधी विचारों को श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है जिससे यही निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि वर्मा जी कला और साहित्य में स्वसंतुष्टि को ही अधिक महत्व देते हैं, किन्तु उन्होंने स्वानुभूति के आधार पर उसे बहुजन अर्थात् समाज के हित के लिए भी स्वीकार कर लिया है। भावनाओं के व्यक्तीकरण के साथ ही भावना का उदात्तीकरण भी वर्मा जी के अनुसार परमावश्यक है।

जीवन की शाश्वत एवं अत्यंत महत्वपूर्ण समस्याओं की भाँति समाज की ज्वलंत समस्याओं पर भी अपने विचारों को वर्मा जी प्रकट करते रहे हैं। एक चिंतनशील साहित्यकार होने के नाते समाज, धर्म, ईश्वर, राजनीति एवं साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर उन्होंने बड़ी गहनता से विचार किया है, जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में बराबर होती रही है, उन सभी विचारों को न तो यहां समेट पाना ही संभव है और न समीचीन ही है। इस सम्बंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वर्मा जी की चिंतन-प्रणाली अत्यंत व्यावहारिक ह एवं यथार्थ धरातल पर विकसित हुई है। उनकी व्यक्तिवादी-चेतना समाज की उपेक्षा नहीं कर सकी है। समाज के गर्हित एवं विकृत तत्वों की तीव्र भर्त्सना करते हुए भी उन्होंने समाज के हित को सर्वोपरि माना है।

प्रस्तुत अध्याय में वर्मा जी के जीवन, व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन की समुचित मीमांसा करने के पश्चात् अगले अध्याय में हम उनके उपन्यासों का परिचयात्मक अनुशीलन करेंगे।

1- साहित्य की मान्यताएँ - पृ० 24

2- ,, ,, पृ० 24